* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ७ रुपये

कौरव-सभामें श्रीकृष्णका विराट्-रूप

अहल्या–उद्धार

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
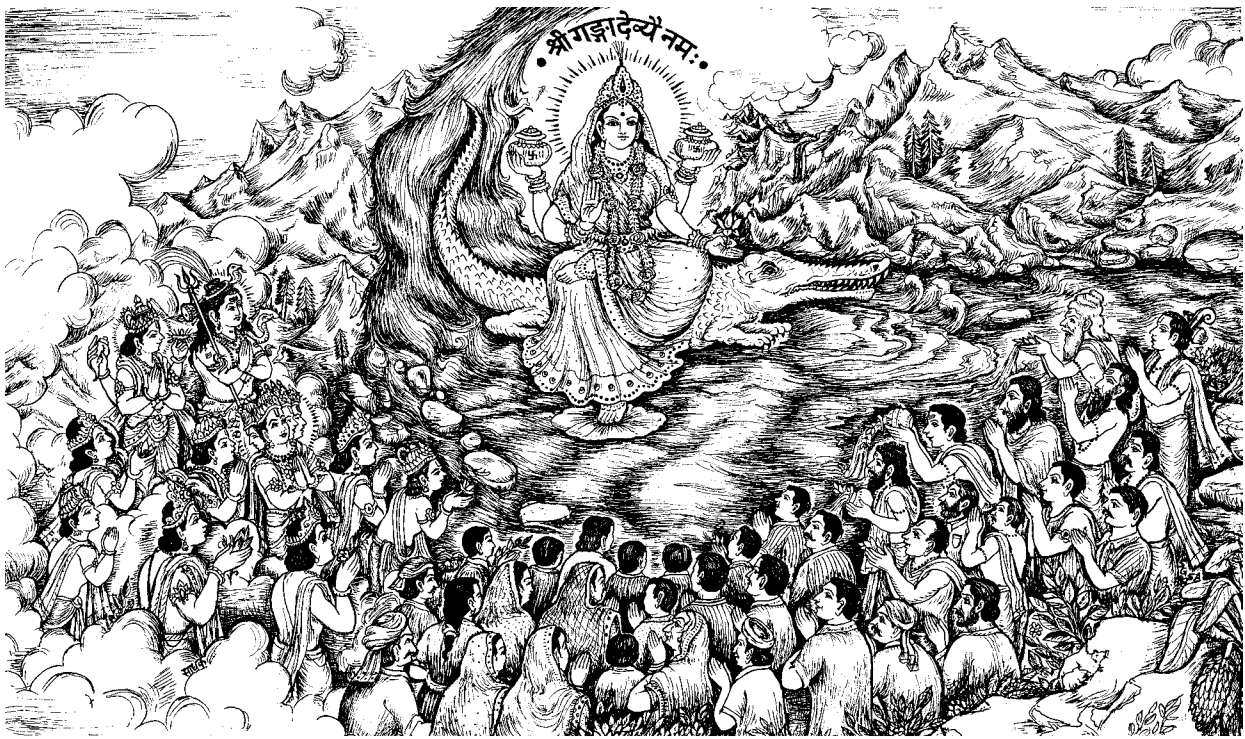
कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०
गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, जुलाई २०१६ ई०
संख्या ७
पूर्ण संख्या १०७६

अहल्या-उद्धार

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥
धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, जुलाई २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- अहल्या-उद्धार	३
२- कल्याण	५
३- कौरव-सभामें श्रीकृष्णका विराट्-रूप [आवरणचित्र-परिचय]	६
४- भगवदर्थ कर्म और भगवान्‌की दयाका रहस्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- सद्बुद्धिका अभाव (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	१०
६- नटराज-उपाधिके रहस्य (श्री 'प्रसन्न')	११
७- अपनी निर्बलता और भगवान्‌की कृपा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
८- 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी' (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीवेदान्तीजी महाराज) [प्रेषक—श्रीमोहनकुमारजी शर्मा]	१४
९- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
१०- सूरकाव्यमें राधा (सुश्री डॉ० नीतू सिंहजी)	१८
११- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव	२०
१२- 'सुख' सम्पन्नताका मोहताज नहीं (श्रीताराचन्दजी आहूजा)	२२
१३- दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ और पूर्णब्रह्म श्रीरामभद्र (श्रीनिमाइचरणजी मिश्र)	२४
१४- भगवान् श्रीकृष्णका नटवरवेश [कविता] (डॉ० श्रीरामनिवासजी पाठक)	२६
१५- मन्त्र-सिद्धि [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	२७
१६- मधुराद्वैताचार्य संत श्रीगुलाबरावजी महाराज (डॉ० श्रीअरविन्द स० जोशी मेहेकर)	३१
१७- रूप-स्मरणका प्रभाव [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग] (आचार्य श्रीरामरंगजी)	३४
१८- भावकी शुद्धिसे कर्मकी शुद्धि (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३५
१९- माँ [कविता] (श्रीपुष्पेन्द्रसिंहजी रघुवंशी, बी०ए०, डी०एड०)	३५
२०- दु:खमें सुख [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	३६
२१- दृढ़निश्चय [प्रेरक-प्रसंग]	३७
२२- राम-नामका अखूट खजाना (महात्मा गाँधीजी)	३८
२३- सङ्कीर्त्तनम् [कविता] (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	३८
२४- अणुयुद्ध हुआ तो गायके गोबरसे लिपा घर ही बचेगा (श्रीरजतकुमारजी)	३९
२५- साधनोपयोगी पत्र	४०
२६- कृपानुभूति	४३
२७- अवन्तिका-माहात्म्य	४४
२८- पढ़ो, समझो और करो	४५
२९- मनन करने योग्य	४८
३०- **'कल्याण' का आगामी ९१वें वर्ष (सन् २०१७ ई०)-का विशेषाङ्क 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क'**	४९

चित्र-सूची

१- कौरव-सभामें श्रीकृष्णका विराट्-रूप	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- अहल्या-उद्धार	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- श्रीरामका ताराको उपदेश देना	(इकरंगा)	१४
४- दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा	(,,)	२४
५- संत श्रीगुलाबरावजी महाराज	(,,)	३१
६- सेठ-सेठानीको सान्त्वना देते नाथजी	(,,)	३७
७- मिथ्या गर्वका परिणाम	(,,)	४८

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जिसमें कोई दोष न हो अथवा जिससे कभी गलती न होती हो। अतएव किसीकी गलती देखकर जलो मत और न उसका बुरा चाहो।

अपनी गलतियाँ देखो और उन्हें सुधारनेकी सतत चेष्टा करो। दूसरोंको देखना हो तो उन्हें उन्हींके दृष्टि-कोणसे और उन्हींकी परिस्थितिमें पहुँचकर देखो, फिर उनकी गलतियाँ उतनी नहीं दिखायी देंगी।

ऐसा कभी मत सोचो कि हम दूसरोंको सुधारनेके लिये ही जीवन धारण करते हैं। पहले अपना सुधार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो जगत्का एक अंग अपने-आप ही सुधर गया। यों यदि सब अपना-अपना सुधार करने लगें तो सारा जागत् अपने-आप ही सुधर जाय।

दूसरोंको सीख देना मत सीखो, अपनी सीख मानकर उसके अनुसार बन जाना सीखो। जो सिखाते हैं, खुद नहीं सीखते—सीखके अनुसार नहीं चलते, वे अपने-आपको और जगत्को भी धोखा देते हैं।

× × ×

याद रखो—सच्ची कमाई है उत्तम-से-उत्तम सद्गुणोंका संग्रह। संसारका प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी सद्गुणसे सम्पन्न है। गुण देखोगे—गुण पाओगे। दोष देखोगे—दोष मिलेगा। दुनियाके प्राणियोंमें दोष-ही-दोष देखनेवाला दोषोंका समुद्र बन जाता है।

जिसका जीवन सुन्दर है, शुभ है—वही वास्तवमें सुन्दर है, परंतु जिसकी केवल बातें ही सुन्दर हैं, जीवन कलुषित है, वह तो पूरा कलंकी है। उसकी सुन्दर बातें वैसी ही हैं, जैसे जहरसे भरे घड़ेके ऊपरका दूध अथवा मलसे भरा हुआ चमकीला मटका।

प्रतिक्षण अपनेको देखते रहो; जरा-सा भी दोष मनमें दिखायी दे तो उसे निकालनेकी कोशिश करो। तुम्हें फुरसत नहीं मिलनी चाहिये अपने सुधारसे।

याद रखो—जब तुम सचमुच सुधर जाओगे, तब तुम्हारे बिना बोले ही तुम्हारा जीवन जगत्को सीख देगा। बल्कि यदि उस हालतमें तुम एकान्तमें भी रहोगे, तब भी तुम्हारे अन्दरके सद्गुणोंकी सुवाससे जगत्को सुख और कल्याण प्राप्त होगा।

दूसरे लोगोंके साथ वैसा ही बरताव करो, जैसा तुम दूसरोंसे अपने लिये चाहते हो। सबके गुण देखो और अभिमान छोड़कर नम्रताके साथ उन्हें लेते चले जाओ।

जैसे धनका लोभी चुपचाप धन कमानेमें लगा रहता है। वह धनके लिये व्याख्यान नहीं दिया करता। वैसे ही चुपचाप दैवी गुणोंकी सम्पत्ति कमानेमें लगे रहो। न तो ढिंढोरा पीटो और न केवल बात बनानेमें ही जीवन बिताओ।

× × ×

यह विचार छोड़ दो कि बिना डाँट-डपटके, बिना डराने-धमकानेके और बिना छल-कपटके तुम्हारे मित्र-साथी, स्त्री-बच्चे या नौकर-चाकर बिगड़ जायँगे। सच्ची बात तो इससे उलटी है। डर-डाँट और छल-कपटसे तो तुम उनको पराया बनाते हो और सदाके लिये उन्हें अपनेसे दूर कर देते हो।

याद रखो—प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय हित, त्याग और निश्छल सत्यके व्यवहारसे ही तुम किसीको अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिये बड़े-से-बड़े त्यागको तैयार हो जायँगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं होगी। लोगोंके हृदयोंमें बड़ा मधुर और प्रिय स्थान तुम्हारे लिये सुरक्षित हो जायगा। तुम भी सुखी होओगे और तुम्हारे सम्पर्कमें जो आयेंगे, उनको भी सुख-शान्ति मिलेगी।

× × ×

याद रखो—तुम जो कुछ दोगे, वही तुम्हें एक बीजके असंख्य फलकी भाँति बहुत बड़े परिमाणमें वापस मिल जायगा। सुख चाहते हो, सुख दो; प्रेम चाहते हो, प्रेमका दान करो; हित चाहते हो, सबके हितकी बात सोचो; सम्मान चाहते हो, सबका सम्मान करो; सद्गुण चाहते हो, सद्गुणोंका दान करो और संसारमें शान्तिपूर्वक रहकर अन्तमें अनन्त शान्ति प्राप्त करना चाहते हो तो जगत्के जीव जिसमें शान्तिसे रह सकें—सहज ही शान्तिको प्राप्त कर सकें, ऐसे कर्म करते रहो।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

कौरव-सभामें श्रीकृष्णका विराट्-रूप

पाण्डवोंके वनवास और अज्ञातवासकी अवधि पूरी होनेपर भी दुर्योधनने जब युद्धके बिना सुईकी नोकके बराबर भी भूमि देनेसे इनकार कर दिया तो युद्ध निश्चित हो गया, पर युद्धमें भीषण संहार होगा—यह विचारकर महाभारत-युद्धको टालनेके अन्तिम प्रयासके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर दुर्योधनको समझानेके उद्देश्यसे हस्तिनापुर गये। वहाँ उन्होंने दुर्योधनको बहुत समझाया कि वह पाण्डवोंको पाँच गाँव ही देकर सन्धि कर ले; किंतु हठधर्मी दुर्योधनने उनकी सब बातें अस्वीकार कर दीं। उलटे वह कर्ण आदि अपने मित्रोंसे सलाह करने लगा कि श्रीकृष्णको पकड़कर कारागारमें डाल दिया जाय। इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपना भयानक विराट्-रूप प्रकट किया।

उन्होंने दुर्योधनसे कहा—दुर्बुद्धि दुर्योधन! तू मोहवश जो मुझे अकेला मान रहा है और इसलिये मेरा तिरस्कार करके जो मुझे पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है। देख, सब पाण्डव यहीं हैं। अन्धक और वृष्णिवंशके वीर भी यहीं मौजूद हैं। आदित्यगण, रुद्रगण तथा महर्षियोंसहित वसुगण भी यही हैं। ऐसा कहकर वे उच्च स्वरसे अट्टहास करने लगे। हँसते समय उन महात्मा श्रीकृष्णके श्रीअंगोंमें स्थित विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा अँगूठेके बराबर छोटे शरीरवाले देवता आगकी लपटें छोड़ने लगे। उनके ललाटमें ब्रह्मा और वक्ष:स्थलमें रुद्रदेव विद्यमान थे। समस्त लोकपाल उनकी भुजाओंमें स्थित थे। उनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं। आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस भी उनके विभिन्न अंगोंमें प्रकट हो गये। उनकी दोनों भुजाओंसे बलराम और अर्जुन प्रकट हो गये। उनकी दाहिनी भुजामें अर्जुन और बायींमें हलधर बलराम विद्यमान थे। भीमसेन, युधिष्ठिर तथा नकुल-सहदेव भगवान्के पृष्ठभागमें स्थित थे। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा हाथोंमें विशाल आयुध लिये भगवान्के अग्रभागमें प्रकट हुए। शंख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग धनुष, हल तथा नन्दक नामक खड्ग—ये ऊपर उठे हुए समस्त आयुध श्रीकृष्णकी अनेक भुजाओंमें देदीप्यमान दिखायी देते थे। उनके नेत्रोंसे, नासिकाके छिद्रोंसे और दोनों कानोंसे सब ओर अत्यन्त भयंकर धूमयुक्त आगकी लपटें प्रकट हो रही थीं। समस्त रोमकूपोंसे सूर्यके समान दिव्य किरणें छिटक रही थीं। महात्मा श्रीकृष्णके उस भयंकर स्वरूपको देखकर समस्त राजाओंके मनमें भय समा गया और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। द्रोणाचार्य, भीष्म, परम बुद्धिमान् विदुर, महाभाग संजय तथा तपस्याके धनी महर्षियोंको भगवान् जनार्दनने स्वयं ही दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे वे उनका दर्शन करनेमें समर्थ हो सके थे।

धृतराष्ट्रने प्रार्थना कि भगवन्! मेरे नेत्रोंका तिरोधान हो चुका है; परंतु आज मैं आपसे पुनः दोनों नेत्र माँगता हूँ। केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ; आपके सिवा और किसीको मैं नहीं देखना चाहता। तब महाबाहु जनार्दनने धृतराष्ट्रसे कहा—'कुरुनन्दन! आपको दो अदृश्य नेत्र प्राप्त हो जायँ।' इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उनके विश्वरूपका दर्शन करनेके लिये धृतराष्ट्रको भी नेत्र प्राप्त हो गये।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णके विराट्-रूप धारण करनेसे सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्रमें खलबली मच गयी और समस्त भूपाल अत्यन्त विस्मित हो गये।

उस समय सभाभवनमें भगवान् श्रीकृष्णका वह परम आश्चर्यमय रूप देखकर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने अपने इस स्वरूपको उस दिव्य, अद्भुत एवं विचित्र ऐश्वर्यको समेट लिया। **[महाभारत, उद्योगपर्व]**

भगवदर्थ कर्म और भगवान्‌की दयाका रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

समस्त प्राणी, पदार्थ, क्रिया और भावका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़कर साधन करनेसे साधकके हृदयमें उत्साह, समता, प्रसन्नता, शान्ति और भगवान्‌की स्मृति हर समय रह सकती है। इससे भगवान्‌में परम श्रद्धा-प्रेम होकर भगवान्‌की प्राप्ति सहज ही हो सकती है। जो कुछ भी है—सब भगवान्‌का है और मैं भी भगवान्‌का हूँ, भगवान् सबमें व्यापक हैं (गीता १८।४६), इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार भगवान्‌के लिये ही कर रहा हूँ, भगवान् ही मेरे परम प्यारे और परम हितैषी हैं—इस प्रकारके भावसे अपने घर या दूकानके कामको अथवा किसी भी धार्मिक संस्थाके कामको अपने प्यारे भगवान्‌का ही काम समझकर और स्वयं भगवान्‌का ही होकर काम करनेसे साधकको कभी उकताहट नहीं आती, प्रत्युत चित्तमें उत्साह, प्रसन्नता और शान्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। यदि नहीं बढ़ती है तो गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि इसमें क्या कारण है। खोज करनेपर पता लगेगा कि श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही इसमें कारण है। इस कमीकी निवृत्तिके लिये साधकको भगवान्‌के शरण होकर उनसे करुणापूर्वक स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये और भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझना चाहिये।

गीता-प्रचारका काम तो प्रत्यक्ष भगवान्‌का ही काम है; इसमें कोई शंकाकी बात नहीं है। जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीताके अर्थ और भावको समझकर गीताका प्रचार करता है, तो उससे उसका उद्धार हो जाता है और भगवान् उससे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इसके लिये गीता (१८।६८-६९)-को देखना चाहिये—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'जो जैसे मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

जो मनुष्य इन दोनों श्लोकोंके अर्थ और भावको भलीभाँति समझ जाता है, उसका तो सारा जीवन गीता-प्रचारमें ही व्यतीत होता है। वर्तमानमें जो कुछ भी गीताका प्रचार हमारे देखने-सुननेमें आता है, उसका भी प्रधान कारण इन दो श्लोकोंके अर्थ और भावका ज्ञान ही है।

अतः गीताप्रचारका कार्य भगवान्‌का ही कार्य है और यह भगवान्‌की विशेष कृपासे ही प्राप्त होता है। रुपये खर्च करनेसे यह नहीं मिलता।

भगवान्‌का काम करना—उनकी आज्ञाका पालन करना भगवान्‌की ही सेवा है। वास्तवमें इस कामको भगवान्‌की सेवा समझकर करनेसे अवश्य ही प्रसन्नता तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है। यदि नहीं मिलती है तो उसने भगवान्‌के कामको भगवान्‌की सेवा समझा ही नहीं। यदि कोई मनुष्य महात्माको महात्मा जानकर उनके कार्यको, उनकी आज्ञाके पालनको उनकी सेवा समझकर करता है तो उसके हृदयमें भी इतना आनन्द होता है कि वह उसमें समाता ही नहीं, तो फिर भगवान्‌की सेवासे परम प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त हों, इसमें तो कहना ही क्या है!

गीता-प्रचारका कार्य करनेवालोंके चित्तमें यदि भगवान्‌की स्मृति, प्रसन्नता, उत्साह, प्रेम और शान्ति नहीं रहती है तो उन्हें इसके कारणकी खोज करनी चाहिये एवं जो दोष समझमें आये, उसको भगवान्‌की दयाका आश्रय लेकर हटाना चाहिये। भगवान्‌की दया

सबपर अपार है, उसको पूर्णतया न समझनेके कारण ही हमलोग प्रसन्नता और शान्तिकी प्राप्तिसे वंचित रहते हैं। हमलोगोंपर भगवान्‌की जो अपार पूर्ण दया है, उसके शतांशको भी हम नहीं समझते हैं। किंतु न समझमें आनेपर भी हमलोगोंको अपने ऊपर भगवान्‌की अपार दया मानते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह आगे जाकर समझमें आ सकती है।

दयाके इस तत्त्वको भलीभाँति समझनेके लिये यहाँ एक दृष्टान्त बतलाया जाता है। वह इस प्रकार है—एक क्षत्रिय-बालक राज्यकी सहायता और व्यवस्थासे एक महाविद्यालयमें अध्ययन करता था। उसके माता-पिता उसे सदा यही उपदेश दिया करते थे कि 'इस देशके राजा उच्चकोटिके ज्ञानी योगी महापुरुष हैं, वे हेतुरहित प्रेमी और दयालु हैं, उनकी हमलोगोंपर बड़ी भारी दया है। हमलोगोंका देहान्त हो जाय तो तुम चिन्ता न करना; क्योंकि महाराज साहबकी दया तुमपर हमलोगोंकी अपेक्षा अतिशय अधिक है।' माता-पिताके इस उपदेशके अनुसार वह ऐसा ही मानता था। समय आनेपर उसके माता-पिता चल बसे, परंतु वह बालक दु:खित नहीं हुआ। विद्यालयके सहपाठी बालकोंने उससे पूछा—'तुम्हारे माता-पिता मर गये, फिर भी तुम्हारे चेहरेपर खेद नहीं, क्या बात है? अब तुम्हारा पालन-पोषण कौन करेगा?' क्षत्रिय बालकने कहा—'मुझे शोक क्यों होता? क्योंकि मेरे माता-पितासे भी बढ़कर मुझपर दया और प्रेम करनेवाले हमारे परम हितैषी महाराज साहब हैं। महाराज साहब उच्चकोटिके ज्ञानी महापुरुष हैं। मैं तो उन्हींपर निर्भर हूँ।' बालककी यह बात सुनकर वहाँके प्रधानाध्यापकको बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखो, इस बालकके हृदयमें महाराज साहबके प्रति कितनी श्रद्धा-भक्ति है। वे प्रधानाध्यापक राज्यकी कौंसिलके सदस्य थे। एक दिन जब कौंसिलकी बैठक हुई, तब वे भी उसमें उपस्थित थे। उस दिन महाराज साहबने कहा—'अपने देशमें कोई अनाथ बालक हो तो बतलायें, उसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे सुचारु रूपसे हो जाना उचित है।' कौंसिलके कई सदस्योंने उसी क्षत्रिय बालकका नाम बतलाया। इसपर राजाने सबकी सम्मतिसे उस बालकके लिये खाने-पीनेका सब प्रबन्ध कर दिया और उसके कच्चे घरको पक्का बनानेका आदेश दे दिया। पढ़ाईका प्रबन्ध तो पहलेसे ही राज्यकी ओरसे था ही।

कुछ ही दिनों बाद जब राजाकी आज्ञासे राजकर्मचारी उसके कच्चे घरको पक्का बनानेके लिये तोड़ रहे थे, तब उस क्षत्रिय बालकके एक सहपाठीने दौड़कर उसे सूचना दी कि तुम्हारे घरको राजकर्मचारी तोड़कर बर्बाद कर रहे हैं। यह सुनकर वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'अहा! महाराज साहबकी मुझपर बड़ी ही दया है। सम्भव है, वे पुराना तुड़वाकर नया घर बनवायेंगे!' उसकी यह बात सुनकर प्रधानाध्यापक आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे—'देखो, इस बालकको कितना प्रबल विश्वास है। महाराजपर कितनी अटूट श्रद्धा है।'

पुन: जब दूसरी बार कौंसिलकी बैठकमें प्रधानाध्यापक सम्मिलित हुए, तब राजाने यह प्रस्ताव रखा—'मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरे संतान नहीं है। अत: युवराजपद किसको दूँ? इसके योग्य कौन है?' इसपर प्रधानाध्यापकने बतलाया—'वह क्षत्रिय बालक गुण, आचरण, विद्या और स्वभावमें सबसे बढ़कर है। वह राजभक्त है और आपपर तो उसकी अपार श्रद्धा है।' इस बातका दूसरे सदस्योंने भी प्रसन्नतापूर्वक समर्थन किया। राजाने सर्वसम्मतिसे उस क्षत्रिय बालकको ही युवराजपद देनेका निर्णय कर दिया।

दूसरे दिन राजाके मन्त्री और कुछ उच्चपदाधिकारी उस क्षत्रिय बालकके घरपर गये। उन सबको आते देख उस क्षत्रिय बालकने उनका अत्यन्त आदर-सत्कार किया और कहा—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' पदाधिकारियोंने कहा—'महाराज साहबकी आपपर बड़ी भारी दया है।' बालक बोला—'यह मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि महाराजकी मुझपर अपार दया है। इसी कारण आपलोगोंकी भी मुझपर बड़ी दया है।'

पदाधिकारियोंने कहा—'हम तो आपके सेवक हैं, आपकी दया चाहते हैं।' बालक बोला—'आप ऐसा कहकर मुझे लज्जित न कीजिये। मैं तो आपका सेवक हूँ। महाराज साहबकी मुझपर दया है—इसको मैं अच्छी तरह जानता हूँ।' पदाधिकारियोंने कहा—'आप जो जानते हैं, उससे कहीं बहुत अधिक उनकी दया है।' क्षत्रिय बालकने पूछा—'क्या महाराज साहबने मेरे विवाहका प्रबन्ध कर दिया है?' तब उन्होंने कहा—'विवाहका प्रबन्ध ही नहीं, महाराज साहबकी तो आपपर अतिशय दया है।' बालकने पुन: पूछा—'क्या महाराज साहबने मुझको दो-चार गाँवोंकी जागीरदारी दे दी है?' पदाधिकारियोंने कहा—'यह तो कुछ नहीं, उनकी आपपर जो दया है, उसका आप अनुमान ही नहीं कर सकते।' इसपर बालकने निवेदन किया—'उनकी मुझपर कैसी दया है, इसे आप ही कृपा करके बतलाइये।' उन्होंने कहा—'आपको महाराज साहबने युवराजपद दे दिया है। इसलिये हम आपकी दया चाहते हैं।' यह सुनकर क्षत्रिय बालक हर्षमें इतना मुग्ध हो गया कि उसे अपने-आपका भी होश नहीं रहा।

इस दृष्टान्तको अध्यात्मविषयमें यों घटाना चाहिये कि भगवान् ही ज्ञानी महापुरुष राजा हैं। श्रद्धालु जिज्ञासु ही क्षत्रिय बालक है। उपदेश देनेवाले गुरुजन ही माता-पिता हैं। सत्संगी साधकगण ही सहपाठी बालक हैं। भगवत्प्रेमी महापुरुष ही कौंसिलके सदस्य प्रधानाध्यापक हैं। राज्यकी ओरसे बालकके खान-पानका प्रबन्ध कराये जानेको लोकदृष्टिसे अनुकूल परिस्थितिकी प्राप्ति और घर तुड़वाये जानेको लोकदृष्टिसे प्रतिकूल परिस्थितिकी प्राप्ति समझना चाहिये तथा इन दोनोंमें बालकके द्वारा राजाका मंगलविधान मानकर प्रसन्न होनेको प्रत्येक घटनामें भगवान्‌का मंगलमय विधान मानकर प्रसन्न होना समझना चाहिये। बालकका राजाको सुहृद् मानकर उनपर निर्भरता, श्रद्धा और विश्वास करना ही भगवत्-शरणागतिका साधन समझना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमलोग अपने ऊपर भगवान्‌की जितनी दया मानते हैं, भगवान्‌की दया उससे कहीं बहुत अधिक है। भगवान्‌की हमपर इतनी दया है कि उसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। यदि हम उस दयाको जान जायँ तो क्षत्रिय बालककी भाँति हमें इतना आनन्द और प्रसन्नता हो कि उसकी सीमा ही न रहे; फिर हमें अपने-आपका भी ज्ञान न रहे।

अत: हमें स्वेच्छा, अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का मंगलमय विधान समझकर और अपनेद्वारा होनेवाली क्रियाओंको भगवान्‌का काम तथा भगवान्‌की परम सेवा समझकर हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

इस प्रकार भगवद्भक्तिके साधनसे साधकके चित्तमें प्रसन्नता, रोमांच और अश्रुपात होने लगता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, वाणी गद्‌गद हो जाती है तथा कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। किंतु मनुष्य जब साधन करते-करते सिद्धावस्थामें पहुँच जाता है—भगवान्‌को पा लेता है, तब वह आमोद, प्रमोद, हर्ष आदिसे ऊपर उठकर परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त कर लेता है। जैसे कड़ाहीमें घी डालकर उसमें कचौड़ी सेंकी जाती है, वह जबतक कच्ची रहती है तबतक तो उछलती है—उसमें विशेष क्रिया होती रहती है; किंतु जब वह पकने लगती है, तब उसका उलछना कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर तो वह शान्त और स्थिर हो जाती है। इसी प्रकार साधनकालमें साधकमें जबतक कच्चाई रहती है, तबतक वह साधन-विषयक आमोद-प्रमोदमें उछलता रहता है एवं उसके रोमांच, अश्रुपात और कण्ठावरोध होता रहता है; किंतु जब साधन पकने लगता है, तब हर्षादि विकारोंका उफान कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर आमोद, प्रमोद, हर्ष आदि विकारोंसे रहित परम शान्त हो जाता है। फिर वह परमात्मामें अचल और स्थिर होकर परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

सद्बुद्धिका अभाव

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

परतन्त्रता, दरिद्रता, अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ भले ही रहें, पर यदि सद्बुद्धि हो तो प्राणी अपना जीवन मंगलमय बना सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य अपने बुद्धि-वैभवसे संसारमें दुर्घट-से-दुर्घट कार्योंका सम्पादन कर सकता है, पर यदि सब कुछ हो और केवल सद्बुद्धि न हो तो फिर धीरे-धीरे ऐश्वर्य, स्वातन्त्र्य, गाम्भीर्य विदा हो जाते हैं और मूर्खता अपनी सहचारिणी दरिद्रता, परतन्त्रता, दीनता आदिको बुलाकर बैठा लेती है। आज अपने यहाँ सद्बुद्धिका अभाव हो रहा है, तभी तो उन्नतिकी ओर अग्रसर करनेवाला कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। सब पापोंका मूल, सब अनर्थोंकी जननी दुर्मति है। इस दुर्मति या मूर्खताका ही परिणाम है कि आज जो कोई अच्छी बात कहे तो भी समझा जाता है कि वह हमारा अकल्याण करना चाहता है। जैसे भेड़ें मूर्खतावश कुएँमें गिरने चलें और कोई रोकना चाहे, तो वे समझने लगती हैं कि यह हमारा शत्रु है। जब अपने हितैषीसे वैमनस्य हो जाता है, कल्याणकारीसे विद्वेष किया जाता है, तब मूर्खताकी अन्तिम पराकाष्ठा हो जाती है। वेदशास्त्र कहते हैं कि धर्मसे कल्याण होता है। सुख चाहना, स्वतन्त्रता चाहना, अनन्त शक्ति चाहना, परंतु उन सबके मूल धर्मसे शत्रुता करना—यह मूर्खता है। परतन्त्रता मिटाना, दीनता-हीनतासे घृणा करना, पर पापसे प्रेम करना—यह उलटा मार्ग है। सत्पुरुष पुकार-पुकारकर कहते हैं—'यदि सुख चाहते हो, सम्पत्ति चाहते हो, स्वराज चाहते हो, मोक्ष चाहते हो, तो धार्मिक बनो', पर दुर्मतिके कारण ऐसे लोगोंको देशद्रोही कहा जाता है, क्या यह मूर्खताकी पराकाष्ठा नहीं है? इसीलिये तो कहना पड़ता है कि भारतवर्षमें जो दरिद्रता तथा परतन्त्रता है वह तो है ही, पर यह जो मूर्खता आयी है, वह एक भयानक विपत्ति है। क्या कारण है कि भारतवर्ष, जो पवित्र क्षेत्र है, जहाँ पवित्रसलिला गंगा-यमुनाकी निर्मल धारा प्रवाहित होती है, वहीं आज इतना भौतिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक पतन हो रहा है। हमें अहंकार और गर्व रहता है कि हम कुछ कर लेंगे, हम भगवान्‌को न पुकारेंगे, उनकी शरणमें न जायँगे, किंतु जो जीमें आयेगा करेंगे। बस, यही तो दुर्बुद्धि है।

ग्वालोंके समान देवता हाथमें डण्डा लेकर मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते, वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सुबुद्धि देते हैं—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥

बिना सद्बुद्धिके धर्माधर्मका ज्ञान होना कठिन है। आज ऐसा भयंकर समय है कि धर्मके नामपर ही धर्मके विपरीत प्रचार किया जा रहा है। दस-बीस धनी-मानी जिसे मानने लगते हैं, दस-पाँच अखबार जिसके हाथमें हैं, वह मनमानी विषकी घूँटी जनताको पिला सकता है। प्राणीमात्रको हर्ष या शोकमें एक-न-एक आश्रयकी आवश्यकता होती है, परंतु आज प्राणी प्रधान आश्रय ईश्वर और धर्मको छोड़कर सुख-साम्राज्यका स्वप्न देख रहा है। कहा जाता है कि आज दिन धर्म करनेवाले अवनतिके गर्तमें देखे जा रहे हैं और उसकी उपेक्षा करनेवाले फल-फूल रहे हैं, परंतु यहाँपर यह ध्यान रखना चाहिये कि प्राणी अधर्मसे—पापसे पहले बढ़ता है; पुत्र, पौत्र, धन-धान्य, सम्पत्ति आदिका दर्शन करता है, शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है परंतु जब विनाश होना प्रारम्भ होता है, तब फिर आमूलचूल होकर ही रहता है। यह कोई अधर्मकी ही महिमा नहीं है कि उससे प्रथम उन्नति हो, किंतु उस उन्नतिमें भी पहलेका धर्म ही कारण होता है—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥

इसीलिये फलमें कुछ देर भले ही हो, पर अंधेर नहीं हो सकता, परंतु जब अधर्म और दुर्बुद्धिका कुचक्र

चल पड़ता है, तब प्रश्न बड़ा जटिल हो जाता है। दुर्बुद्धिसे अधर्म और अधर्मसे दुर्बुद्धि—इस चक्करसे बेचारे प्राणीका छुटकारा कैसे हो? तब उसके लिये केवल एक ही मार्ग रह जाता है। सद्‌बुद्धि ढूँढ़नेके लिये देश-विदेशमें ठोकरें खानेकी आवश्यकता नहीं है, उसके लिये सबके हृदयमें स्थित, सर्वव्यापी, मर्यादापुरुषोत्तम परमात्माके ही शरण जाना है, उसके इशारेसे ही हृदय नाचता है—***‘उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।’***दोष मिटानेके लिये यद्यपि अनेक साधन हैं, पर उनमें अनेक बखेड़े हैं, अनेक झगड़े हैं। सब दुःखोंका मूल, सब पापोंका सार, सब विपत्तियोंका तत्त्व तो हमारी दुर्मति ही है। उसे मिटाकर सुमतिका संचार हो, इसके लिये सर्वप्रेरक, सर्वान्तर्यामी, परमदयालु, भक्तवत्सल भगवान्‌को छोड़कर और किसका सहारा पकड़ा जाय? भगवत्कृपासे जहाँ प्राणियोंमें सद्‌बुद्धि आयी कि धर्मकी रक्षा हुई, धर्ममें लोगोंकी प्रवृत्ति हुई तो फिर इसके द्वारा प्राणियोंका कल्याण हुआ। हम सर्वथा असहाय हैं, हमारे पास अस्त्र-शस्त्र नहीं, ऐसी स्थितिमें भगवान्‌को पुकारनेके सिवा हम कर ही क्या सकते हैं? गायत्री हमलोगोंका महामन्त्र है, समस्त वेदोंका सार है। उसमें धन नहीं माँगा गया, पुत्र-पौत्र नहीं माँगे गये, स्वतन्त्रता, स्वराज्य नहीं माँगा गया। उसमें तो केवल यही प्रार्थना की गयी है कि ‘हे पुरुषोत्तम! हे सर्वात्मन्! हे सर्वान्तरव्यापिन् भगवन्! हमारी बुद्धिको सद्विचारोंकी ओर प्रेरित कीजिये।

नटराज-उपाधिके रहस्य*

(श्री ‘प्रसन्न’)

किसी समय प्रदोषकालमें जब देवगण रजतगिरि कैलासपर ‘नटराज’ शिवके ताण्डवमें सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्रीगौरीजी रत्नसिंहासनपर बैठकर अपनी अध्यक्षतामें ताण्डव करानेको तैयार हुईं। ठीक उसी समय वहाँ श्रीनारदजी महाराज भी पहुँच गये और अपनी वीणाके साथ ताण्डवमें सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्रीशिवजी ताण्डवनृत्य करने लगे, श्रीसरस्वतीजी वीणा बजाने लगीं, इन्द्र महाराज वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथसे ताल देने लगे और लक्ष्मीजी आगे-आगे गाने लगीं, विष्णुभगवान् मृदंग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराएँ—सभी चारों ओर स्तुतिमें लीन हो गये। बड़े ही आनन्दके साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्रीआद्या भगवती (महाकाली) पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्रीशिवजी (महाकाल)-से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवोंसे, विशेषकर नारदजीसे प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि ‘हे देवि! इस आनन्दको केवल हमींलोग लेते हैं, किंतु पृथिवीतलमें एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्दसे तथा नृत्य-दर्शनसे वंचित रहते हैं, अतएव मृत्युलोकमें भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्दको प्राप्त करें, ऐसा कीजिये, किंतु मैं अपने ताण्डवको समाप्त करूँगा और ‘लास्य’ करूँगा।’ इस बातको सुनकर श्रीआद्या भुवनेश्वरी महाकालीने ‘एवमस्तु’ कहा और देवगणोंसे मनुष्य-अवतार लेनेको कहा और स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दरका अवतार लेकर श्रीवृन्दावनधाममें आयीं और श्रीशिवजी (महाकाल)-ने राधाजीका अवतार लेकर व्रजमें जन्म लिया और ‘देवदुर्लभ रासमण्डल’ की आयोजना की और वही ‘नटराज’ की उपाधि यहाँ श्यामसुन्दरको दी गयी। बोलो नटराज भगवान्‌की जय!

* यह कथा श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराजकी शिष्य-परम्पराके किसी वयोवृद्ध परम भक्त वैष्णवने सुनी थी और मुझे काशीमें ‘श्रीशिव-पार्वती’ तथा ‘कृष्ण-राधा’ में ऐक्यभाव है, इस दृष्टिसे उन्होंने समझायी थी और किसी उपपुराणका नाम भी बताया था, वह मुझे स्मरण नहीं है। भक्तजन लाभ उठायें, इसीलिये इसे लिख दिया।

अपनी निर्बलता और भगवान्‌की कृपा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् बड़े दयालु हैं और हम लोग भी अपनेको भगवान्‌का मान लेते हैं। फिर भगवान् हमारे हो जाते हैं। जब हम भगवान्‌के हो जाते हैं और जब हम भगवान्‌के अनुकूल कार्य करना चाहते हैं, जब हम भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये ही जीवित रहना चाहते हैं तब स्वाभाविक ही उनकी रुचिका अनुसरण हम अपने आप करते हैं। यह स्वाभाविक बात है कि जब किसीकी प्रसन्नताके लिये हम कार्य करें, किसीको प्रसन्न करना चाहें तब स्वाभाविक ही उसके अनुकूल कार्य करेंगे। मालिकको प्रसन्न करना है, अपने घरमें आये हुए किसी अतिथिको प्रसन्न करना है, किसीसे स्वार्थवश कोई कार्य निकालना है तो उसे प्रसन्न करना है तब जिसको प्रसन्न करना होगा, उसके अनुकूल बनना पड़ेगा। प्रतिकूल बनकर हम किसीको प्रसन्न नहीं कर सकते। यह एक साधारण नियम है।

जब हम भगवान्‌को प्रसन्न करनेकी इच्छा रखेंगे तो स्वाभाविक ही इस बातको देखेंगे भी कि कौन-कौनसे कार्य भगवान्‌को पसन्द हैं और कौन-से नापसन्द हैं। भगवान्‌को नापसन्द कार्योंको, भगवान्‌के अरुचिकर कार्योंको हम अपने आप स्वाभाविक ही छोड़ देंगे। हमारा कदाचार नष्ट हो जायगा और हममें सदाचार अपने आप आ जायगा। भगवान्‌के हो जानेपर सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। उसकी यह युक्ति है कि जब हम भगवान्‌के अनुकूल कार्य करेंगे तो भगवान्‌के अनुकूल जो कार्य हैं, वे कभी बुरे कार्य नहीं हो सकते हैं। सदाचार ही भगवान्‌के अनुकूल है। भगवान्‌का हो जानेपर अपनेको भगवान्‌का मान लेनेपर जब हम भगवान्‌के अनुकूल कार्य करना चाहेंगे तो स्वाभाविक ही हमारी सारी क्रियाओंमें सद्भाव आ जायगा। भगवान्‌की अनुकूलता आ जायगी और धर्म आ जायगा। वास्तवमें भगवान्‌के अनुकूल कार्यका नाम ही धर्म है। भगवान्‌के प्रतिकूल सारा अधर्म है और भगवान्‌के अनुकूल सारा कार्य धर्म है। उसके बाद क्या होगा? यह थोड़ा समझनेकी बात है।

जब हम किसीकी सेवा करते हैं, जब हम किसीको प्रसन्न करना चाहते हैं तो उसकी रुचि क्या है? वह चाहता क्या है, उसे हम जानना चाहेंगे और रुचिको जानते-जानते कुछ दिनों बाद उसके मनको जान जायँगे। उसके मनमें क्या है? वह वास्तवमें क्या चाहता है। ऐसा माना गया है कि ज्ञानसे भक्ति होती है और भक्तिसे यथार्थ ज्ञान होता है। तब भगवान्‌में प्रवेश होता है अथवा भगवान्‌के लीलाराज्यमें प्रवेश होता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५४-५५)

गीताके ये दो श्लोक पराभक्ति-प्रसंगके हैं। इनका अर्थ हम इस प्रकार करें कि सदाचार, सद्भावका साधन करते-करते हमें भगवान्‌का ज्ञान होता है। बिना ज्ञानके प्रेम नहीं होता है। आरम्भमें यदि हम यह जाने ही नहीं कि श्रीकृष्ण कैसे हैं, कितने सुन्दर हैं, कितने मधुर हैं और कितने ऐश्वर्यवान् हैं, भगवान् कैसे हैं, जब हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। तब हम उनसे प्रेम कर ही नहीं सकते। इसलिये प्रेमके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है। हमने पहले भगवान्‌के लौकिक रूपको जाना। उनका ज्ञान हुआ। ज्ञान होनेपर देखा तो उनके प्रति हमारी भक्ति जागी।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।

भगवान्‌ने कहा है—**'मद्भक्तिम्।'** इस प्रकारका होनेके बाद उसको मेरी भक्तिकी प्राप्ति होती है। मेरी पराभक्तिकी। मेरी भक्ति प्राप्त होनेके बाद क्या होता है? **'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।'** यह बहुत सावधानीसे समझनेका प्रसंग है। जब हम

किसीके साथ प्रेम करते हैं; तब उसका हृदय खुलता है। एक आदमीको हमने ऊपर-ऊपरसे जाना कि यह महात्मा है, यह धनी है। उसके पास कितना धन है, वह किस दर्जेका महात्मा है, वह किस प्रकारका महापुरुष है। उसके पास किस प्रकारकी साधन-सम्पत्तियाँ हैं? उसके पास कितना धन है? उसके मनमें क्या-क्या विचित्र भाव भरे हैं। उसके जीवनमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं—इन सबका पता हमें तब लगेगा। जब हम प्रेमके द्वारा उसके अन्तरंग हो जायँगे। वह समझ लेगा कि यह मेरा है। जब वह यह समझ लेगा, तब अपना हृदय खोल देगा। तब वह हमारे सामने अपने हृदयकी बात—गुप्त बात—रहस्यकी बात कह देगा। आप सबने गीतामें इस बातको पढ़ा है कि अर्जुन भगवान्‌का हो गया। भगवान्‌ने अर्जुनसे बहुत-सी बातें कहीं और अन्तमें भगवान्‌ने उनकी परीक्षा लेनेके लिये कहा—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्‌गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

(गीता १८। ६३)

मेरे द्वारा गुह्य-से-गुह्यतर ज्ञान तुमसे कहा गया। अब तुम सोच-समझकर जो इच्छा हो, वह करो। जो तुम्हें ठीक लगे, वह करो। फिर अर्जुनकी आँखोंमें आँसू आ गये। अर्जुनने सोचा कि भगवान् यह तीसरी बात क्यों कहने लगे? कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। यह तो परायेको कहा जाता है। अर्जुनका हृदय विगलित हो गया। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। तब भगवान्‌ने हाथ पकड़ लिया और कहा—भैया! ऐसा नहीं है। सुनो—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

(गीता १८। ६४)

अर्जुन! तुम मेरे प्यारे हो। इसलिये जो बात सब प्रकारसे छिपी हुई है, वह कहता हूँ। एक होता है गुह्य, एक गुह्यतर, एक गुह्यतम और एक सर्वगुह्यतम। छिपी हुई बातको कहते हैं—गुह्य। जो छिपी हुई में छिपी हुई है उसे—गुह्यतर। छिपी हुई में छिपी हुई में छिपी हुईको गुह्यतम और जो उसमें भी छिपी हुई हो, वह है—सर्वगुह्यतम। 'जो बात किसीसे कहनेकी नहीं है, वह बात अर्जुन! मैं तुमसे कहता हूँ'—भगवान्‌ने कहा। उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहा—तुम भटकते क्यों हो? इतना ज्ञान सुननेकी आवश्यकता क्या है? तुम—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

(गीता १८। ६५)

सब कुछ तो मैं ही हूँ। तुम मेरेमें मन लगाओ। मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो। मुझे नमस्कार करो—भगवान्‌ने कहा। कोई भला आदमी व्याख्यान देने बैठे और कह दे कि तुम मेरी पूजा करो, मेरे भक्त बनो, तब लोग क्या कहेंगे? यह बात कहनेमें नहीं आती या तो यह बात छल करनेवाले दाम्भिक लोग कहते हैं, ठगनेवाले या बेशर्म लोग कहते हैं अथवा अपने अन्तरंग भक्तके सामने भगवान् कहते हैं। भगवान्‌ने अन्तरंगतामें अर्जुनसे कहा कि भैया! तुम मेरी शरणमें आ जाओ और सब धर्मोंको छोड़ दो।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(गीता १८। ६६)

यह गुह्यतम बात भगवान्‌ने अर्जुनसे कही। गुह्यतम बात कब कही जाती है। आज तो हमारी बाहरी जान-पहचान है। बहुत मीठे बोलते हैं। लेन-देनका व्यवहार भी है, परंतु हृदयकी बात आप नहीं बताते हैं। जब आपसे प्रेम होगा। जब आप समझेंगे कि यह मेरा है और मैं इसका हूँ—अन्तरंगता आ जायगी, तब परदा हटेगा। उसके बाद आप अपने अन्दरकी बात, अपने हृदयकी बात बतायेंगे कि भैया! हम ऐसे हैं।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

भक्तिके द्वारा मैं कैसा और क्या हूँ, यह वह जानता है और, जाननेके बाद क्या होता है। '**विशते तदनन्तरम्**'—जानते ही मेरे लीला-राज्यमें उसका प्रवेश हो गया, मुझमें प्रवेश हो गया। कहनेका अर्थ यह है कि पहले थोड़ी जानकारी होती है। जानकारीके बाद प्रेम होता है। प्रेमसे वास्तविक जानकारी होती है। असली जानकारीके बाद लीलामें प्रवेश हो जाता है।

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'

(श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीवेदान्तीजी महाराज)

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥

(रा०च०मा० ४। ११। ३)

रामने ताराको क्या ज्ञान दिया?

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

(रा०च०मा० ४। ११। ४-५)

भगवान् रामने पूछा कि ऐ तारा? तू क्यों रो रही
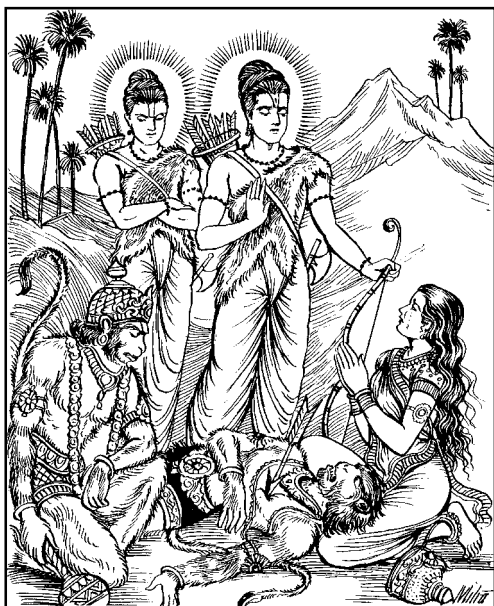
है? तेरे रोनेका कारण क्या है? ताराने रोकर कहा कि मेरा पति मर गया है। इस कारण मैं रोती हूँ। भगवान् रामने पूछा कि तुम्हारे पतिका शरीर मर गया है या तुम्हारे पति बालिकी आत्मा मर गयी है?

जीवात्माके लिये नहीं रोना चाहिये और अधम शरीर सदा मरा हुआ है, इसलिये शरीरके लिये भी नहीं रोना चाहिये। जैसे जबतक मोटरमें ड्राइवर रहकर मोटर चलाता है, तबतक मोटर दौड़ती रहती है, परंतु मोटर दौड़नेसे चेतन नहीं हो जाती, जड़ (मुर्दा) ही रहती है और ड्राइवरके उतर पड़नेपर जब मोटर दौड़ना बन्द कर देती है और खड़ी हो जाती है तब भी मोटर जड़ (मुर्दा) ही है। उसी प्रकार जबतक शरीररूपी मोटरमें जीवात्मा-रूपी ड्राइवर रहता है, तबतक शरीररूपी मोटर सारे काम करती रहती है, परंतु शरीर सारे काम करते हुए भी जड़ (मुर्दा) ही रहता है और जब जीवात्मारूपी ड्राइवर उतर पड़ता है, तब भी शरीर मुर्दा ही है अर्थात् जीवात्मा सदा जिन्दा है और शरीर सदा मुर्दा है, फिर किसके मरनेका शोक करती है? शरीर सदा मरा हुआ है। शरीरको कभी जिन्दा समझना और कभी मुर्दा समझना महान् मूर्खता है। शरीरको सदा मरा हुआ जड़ समझना चाहिये और जीवात्माको सदा जिन्दा चेतन समझना चाहिये। ऐसा समझ लेनेपर मरनेका शोक दूर हो जायगा।

जीव मेरा अंश है। वही तुम्हारे पतिका और तुम्हारा भी स्वरूप है। तुम तारा नहीं, तारा शरीरका नाम है।

उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

(रा०च०मा० ४। ११। ६)

अब ताराको ऐसा ज्ञान हो गया कि ईश्वरका अंश होनेसे जीवात्मा अजन्मा अविनाशी है और वही जीवात्मा मैं भी हूँ। इससे अपने अंशी भगवान् रामसे प्रेम करना चाहिये तथा शरीरोंका मोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि मायासे उत्पन्न हुए मिथ्या पंचभूतोंसे रचित होनेसे शरीर जड़ और असत् है। मायासे उत्पन्न पदार्थ सत्य नहीं होते। अतः ताराने ज्ञान उत्पन्न होनेपर भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और परम भक्तिका वर माँग लिया; क्योंकि अंशको अंशीसे ही प्रेम करना चाहिये, जैसे सूर्यकी किरणोंका सूर्यसे ही सम्बन्ध हो सकता है और किसीसे नहीं। सारे जीव किरणोंके समान हैं और ईश्वर सूर्यके समान है। इसीलिये मीराका निश्चय था कि—

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई॥'

जैसे मुनीम दुकानकी सेवा सेठके नातेसे और माली बगीचेकी सेवा मालिकके नातेसे करता है। उसी प्रकार भगवान्के नातेसे संसारकी सेवा करना चाहिये, परंतु भगवान्को छोड़कर ममता किसीसे नहीं करना चाहिये।

[प्रेषक—श्रीमोहनकुमारजी शर्मा]

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[भगवान्‌का भजन करनेमें ही कल्याण है]

[गताङ्क ६ पृ० २१ से आगे]

मनुष्य-शरीरमें आप केवल परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते। आपको वहम है कि हम धनी हो जायँगे, हमारा नाम हो जायगा, पर कितने दिन? जितने दिन आप उसमें राजी रहो, उतने दिन आपके मुफ्तमें, ठगाईमें चले गये। अगर आप होशमें रहते तो इस प्रकार धोखेमें नहीं आते। बड़े-बड़े विरक्त और त्यागी संत-महापुरुष हुए हैं, क्या वे बे-अक्ल थे, जो त्याग करके भजनमें लग गये? क्या उनमें समझ नहीं थी? वे तो सार चीजमें लगे थे।

एक संत थे। वे भिक्षाके लिये एक सेठके यहाँ गये। सेठने आकर नमस्कार किया तो संतने भी उसको नमस्कार किया। वह संतके पैरों पड़ा तो संत भी उसके पैरों पड़े। सेठ बोला कि 'महाराज! आप कैसे पैरों पड़ते हैं?' संत बोले कि 'तुम कैसे पैरों पड़ते हो?' तो सेठने कहा कि 'महाराज! आप त्यागी हो, आपने स्त्री, पुत्र, धन, जमीन, जायदाद, मकान आदिका त्याग किया है, इसलिये आप बड़े हो।' संतने उत्तर दिया कि 'अगर त्यागको देखें तो तुम बड़े हुए, क्योंकि तुमने स्त्री, पुत्र, धन आदिके लिये भगवान्‌का त्याग कर दिया है। बड़ी चीज भगवान् है कि रुपया? त्यागी तुम बड़े हुए कि मैं बड़ा हुआ? जो बड़ा त्याग करे, वह बड़ा त्यागी और जो छोटा त्याग करे, वह छोटा त्यागी। तुम कितने बड़े त्यागी हो कि संसारके भरोसे भगवान्‌को भी इस्तीफा देकर बैठ गये।' तो सज्जनो! ऐसे त्यागी आप बने बैठे हो। जरा सोचो तो सही, एक पलक मारते ही प्राण चले जायँगे तो उस समय धन, सम्पत्ति, वैभव क्या काम आयेगा? अगर भगवान्‌का भजन किया है तो वह काम आयेगा। लोगोंपर भी भजनका असर पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायणसे कितनोंको शान्ति मिलती है। कितनोंकी जीविका चलती है। कितने आदमी सुधर जाते हैं। क्या कोई करोड़पति-अरबपति आदमी दुनियाँका इतना उपकार कर सकता है? नहीं कर सकता। अतः भगवान्‌के भजनमें लगकर आप दुनियाँका कितना भला कर सकते हैं, इसकी कोई गिनती नहीं है।

धन कमानेमें कोई स्वाधीनता नहीं है। सब लखपति नहीं बन सकते, पर एक लाख नाम रोजाना ले सकते हैं। साधारण-से-साधारण भाई-बहन भी अगर विचार कर लें कि रोजाना लाख नाम लेना है, तो लाख नाम रोजाना ले सकते हैं, परंतु लाख रुपया उम्रभरमें हरेकको देखनेको भी नहीं मिलता। जिसमें आप स्वतन्त्र हो, वह तो करते नहीं और जो करते हो, उसमें आप स्वतन्त्र नहीं। जिस धनका संग्रह करते हो, वह तो साथ जायगा नहीं और जो साथ जायगा, उस भजनका संग्रह करते नहीं। आपको होश कब आयेगा? चेत कब होगा? बच्चे कहते हैं कि जब हम बड़े होंगे, तब हम ऐसा करेंगे। माँ भी कहती है कि जब हमारा लाला बड़ा हो जायगा, तब ठीक काम करेगा। ऐसे ही मैं कहता हूँ कि आप कब बड़े होओगे? कब अपने उद्धारकी बात सोचोगे? अपने उद्धारकी बात किस दिनके लिये बाकी रखी है? बाल सफेद होने लगे हैं तो यह बुलावा आ गया है यमराजका!

महाराज दशरथजीने दर्पण लेकर अपना मुकुट ठीक किया तो देखा कि कानके पास बाल सफेद हो गये हैं, अब वृद्धावस्था कानमें आकर कह रही है कि चेत करो, बुलावा आ गया है, मौतका सन्देश आ गया है। ***'श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥'*** जैसे लड़केके विवाहमें दूसरोंको बुलाते हैं तो पीले चावल देते हैं। विवाहके चावल पीले होते

हैं, मौतके चावल सफेद होते हैं। बाल सफेद हो गये हैं तो ये यमराजके चावल आ गये हैं, यमराजका बुलावा आ गया है। अब जाना पड़ेगा। आप जितने दिन जी गये, आगे उतने दिन जीना मुश्किल है।

कई घरोंकी ऐसी बात मैंने सुनी है कि लड़के पिताजीसे कहते हैं कि आप भजन करो, काम हम करेंगे, परंतु आप उनके काममें बाधा डालते हो, बीचमें टाँग अड़ाते हो। लड़के बेचारे उकता जाते हैं। बूढ़ी माताएँ बहुओंको तंग कर देती हैं, उनको काम नहीं करने देतीं, बीचमें टाँग अड़ाती हैं। इससे काम बिगड़ता है, वे नाराज होती हैं और आपको आफत होती है। आपको भजन करनेका मौका मिला है तो बड़ी अच्छी बात है। बेटे और बहूसे कहो कि यह लो चाबी और काम सँभालो। आप कहोगे कि महाराज! वे काम बिगाड़ देंगे, तो यदि आप आज मर गये तो उसको कौन सँभालेगा? उसका कौन सुधार करेगा? अन्तमें मरना तो पड़ेगा ही, फिर पहले ही मर जाओ, भजन तो हो जायगा। वे काम बिगाड़ते हैं तो उनको सुधारनेकी बात कहो। उनको तंग क्यों करते हो? बहू एक दिन मालकिन तो बनेगी ही। जिस दिन बहू आ जाय तो समझो कि घरकी मालकिन आ गयी। थोड़ा काम खुद भी कर दो; क्योंकि रोटी खाते हो। ऐसा करोगे तो सुखी हो जाओगे। आपका बेटा बड़ा हो जाय तो उसको धीरे-धीरे काम करना सिखा दो। जो सरकारी नौकरी करते हैं, वे भी रिटायर होते हैं। आप गृहस्थमें रहते हुए रिटायर कब होंगे? जिसके लिये संसारमें आना हुआ है, वह असली काम कब करोगे? अन्धाधुन्ध होकर हाय पैसा, हाय पैसा कर रहे हो। नतीजा क्या होगा? इधर ध्यान ही नहीं देते हो। कलकत्तामें एक भाईसे मैंने कहा कि आपके पास इतना धन है कि कई पीढ़ियोंतक बैठकर खायें फिर भजन क्यों नहीं करते? पैसा-ही-पैसा कमानेमें क्यों लगे हो? वह सज्जन आदमी था। उसने कहा कि स्वामीजी! इसका मेरे पास जवाब नहीं है।

भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। बड़ा सुन्दर अवसर मिला हुआ है, परंतु क्या करें? '**पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्**' जैसे दारू पी हो, ऐसे नशेमें चलते हैं। ख्याल नहीं करते कि मौत नजदीक आ रही है। कब चेतोगे? कब भजन-स्मरण करोगे? कब अपना उद्धार करोगे? भाइयो-बहनो! जिस कामके लिये मानव-शरीर मिला है, वह काम पहले करो। पहले परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करो। उसमें आप सब स्वतन्त्र हो। धन कमानेमें सब स्वतन्त्र नहीं हो। दूसरेकी तिजोरी खुलेगी, तब धन मिलेगा, परंतु परमात्मप्राप्तिके लिये ऐसा नहीं है कि तिजोरी खुलेगी, तब मिलेगा। वह तो चौड़े पड़ा हुआ है।

राम दड़ी चौड़े पड़ी, सब कोइ खेलो आय।
दावा नहीं संतदास, जीते सो ले जाय॥

खुला माल पड़ा हुआ है, फिर देरी किस बातकी? जो साथमें चलता है, वह तो लेते नहीं और जो लेते हो, वह साथ चलता नहीं। क्या दशा होगी? जरा सोचो। अच्छा काम करोगे, भजन-स्मरण करोगे तो यह पूँजी साथमें चलेगी। लोग भी सद्भावसे याद करेंगे। दुष्टताका काम करोगे तो मरनेपर लोग राजी हो जायँगे। एक पण्डितजी थे। वे काशीसे पढ़कर आये। पुस्तकें लदी हुई थीं। शहरमेंसे होकर निकले तो वर्षा आ गयी। पासमें छाता नहीं था, अत: एक मकानके भीतर दरवाजेमें खड़े हो गये। उसके ऊपर एक वेश्या रहती थी। बाहर कुछ आदमी एक मुर्देको लिये जा रहे थे। वेश्याने एक लड़कीसे कहा कि जाकर पता लगाओ कि 'यह स्वर्गमें गया या नरकमें गया।' यह सुनकर पण्डितजी ठहर गये कि देखें, ऐसी क्या विद्या है, जिससे मरनेवालेका पता लग जाय। थोड़ी देरमें लड़कीने आकर कहा कि 'यह तो नरकोंमें गया।' एक दूसरा मुर्दा जा रहा था। उसके लिये वेश्याने पूछा तो लड़कीने पता लगाकर कहा कि 'वह तो स्वर्गमें गया।' पण्डितजीने विचार किया कि मैं इतने वर्ष काशीमें रहा, कितनी पुस्तकें पढ़ीं, पर यह पता

नहीं लगता कि मरनेवाला कहाँ गया, यह विद्या तो हमें सीखनी है। पण्डितजी ऊपर चले गये। वेश्याने देखा कि यह मेरा ग्राहक तो है नहीं। उसने पण्डितजीको पहचान लिया और पूछा कि कैसे आये? पण्डितजीने कहा कि 'आदमी मरकर नरकोंमें गया या स्वर्गमें गया'—यह विद्या हम जानना चाहते हैं। वेश्याने उस लड़कीको बुलाया और कहा कि 'वह नरकमें गया या स्वर्गमें गया'—इसकी तूने कैसे परीक्षा की, यह महाराजको बता। वह कहने लगी कि 'महाराज! जो मुर्देको लेकर जा रहे थे, उनसे मैंने पूछा कि यह कहाँसे आया है? किस मोहल्लेका है? मैं उस मोहल्लेमें पहुँची। लोग रो रहे थे तो पता लगा कि इस घरका आदमी मर गया। मैंने पड़ोसियोंके घरोंमें जाकर सुना तो वे कह रहे थे कि वह आदमी मर गया तो हम निहाल हो गये। वह चुगली करता था, चोरी करा देता था, लड़ाई करा देता था, झूठी गवाही देकर फँसा देता था। मर गया तो बहुत अच्छा हुआ। नहीं तो बड़ी आफत करता था वह। ऐसी बातें मैंने कई घरोंमें सुनीं तो आकर कहा कि वह नरकोंमें गया। दूसरा मुर्दा आया तो उसके मोहल्लेमें जाकर देखा कि वहाँके घरोंमें लोग आपसमें बातें करते थे कि 'वह आदमी मर गया। राम-राम, गजब हो गया। वह तो अपने मोहल्लेका एक प्रकाश था। कोई संत-महात्मा आते तो वह सत्संग कराता, कोई बीमार होता तो रातों जागता था, दवाईका प्रबन्ध करता था, किसीपर कोई आफत आ जाय तो तन-मन-धनसे उसकी सहायता करता था, वह चला गया। हमारे मोहल्लेमें तो अँधेरा हो गया।' ऐसी बातें मैंने सुनीं तो आकर कहा कि 'वह तो स्वर्गमें गया।' पण्डितजीने कहा—अरे! ये बातें तो शास्त्रोंमें लिखी हैं कि 'जो अच्छे काम करता है, उसकी सद्‌गति होती है और जो बुरे काम करता है, उसकी दुर्गति होती है,' पर यह तो हमारी अक्लमें ही नहीं आयी।

अच्छे पुरुष चले जाते हैं तो पीछे उनकी महिमा होती है और बुरे पुरुष मर जाते हैं तो लोग राजी होते हैं कि निहाल हुए, आफत मिटी। क्या आपको ऐसा बनना है कि पीछे लोग कहें कि आफत मिटी! अच्छा या बुरा बनना आपके हाथकी बात है। इसमें आपके भाग्यकी, योग्यताकी बात नहीं है। केवल आपकी दृष्टि दूसरोंका उपकार करनेकी, सेवा करनेकी होनी चाहिये। पहले जमानेमें लोग पैदल बदरीनारायण जाते थे। पन्द्रह-बीस-पचास आदमी जा रहे हैं। उनमें बड़ी-बूढ़ी माताएँ भी हैं। रात्रिमें किसी चट्टीमें जाकर ठहरते हैं। बोझा लेकर चलनेके कारण बेचारे थक गये हैं और नींद आ रही है। उनमेंसे दो-चार अच्छे आदमी चट उठकर जाते हैं, जल भर देते हैं, लकड़ियाँ ले आते हैं और रसोई बनाते हैं। सोये हुओंको उठाकर कहते हैं कि भोजन करो। थके हुए हैं और भूख लगी हुई है, उठकर गरमागरम रोटी और दाल पा लेते हैं और फिर सो जाते हैं। बदरीनारायण तो सब जाते हैं, पर इस प्रकार सेवा करनेवालोंको जो फल मिलता है, वह सबको मिलता है क्या? जिनका दूसरोंकी सेवा करनेका स्वभाव होता है, वे जहाँ जायँगे, वहाँ भी दूसरोंकी सेवा करेंगे, तो उनका कितना पुण्य बढ़ेगा? यह स्वभाव आप बना सकते हो। ऐश-आराम करनेमें, हुक्म चलानेमें कोई लाभ नहीं है। लाभ सेवा करनेमें है, दूसरोंको सुख पहुँचानेमें है। मेरेको सुख-आराम मिले—यह लोभ तो कुत्तों और गधोंमें भी होता है, इसमें कोई मनुष्यता है? मनुष्यता तो त्याग करनेमें, सेवा करनेमें, दूसरोंको सुख पहुँचानेमें है। अगर ऐसा नहीं कर रहे हैं तो मनुष्यजन्म क्यों लिया। सीट क्यों रोकी? हमारी जगह कोई अच्छा प्राणी आता तो वह अपना कल्याण कर लेता। भगवान् कहते हैं—'**अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति**' (गीता ३।१६) वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला अघायु (पापमय जीवन बितानेवाला) मनुष्य संसारमें व्यर्थ ही जीता है, वह मर जाय तो अच्छा है। '**भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत**' वह जीना ही प्रेतके समान है। [**क्रमशः**]

सूरकाव्यमें राधा

(सुश्री डॉ० नीतू सिंहजी)

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने अपनी पुस्तक 'सूरकी साहित्य साधना' में कृष्णकी अनन्य प्रेमिका राधाका चरित्र व्यक्त करते हुए लिखा है—'पर और भी धन्य है वह बाल किशोरी, वह 'लालकी बतरस लालचसे मुरली लुका धरनेवाली', वह आँखमिचौलीमें बड़ी अँखियनके कारण बदनाम बरसानेकी छबीली वृषभानुलली। वह बालिका है, वह किशोरी है, वह ग्वालिनी है, वह ब्रजरानी है। शोभा उसपर सौ जानसे निसार है, श्रृंगार उसका गुलाम है, त्रैलोक्यनाथ उसकी आँखोंकी कोरके मुहताज हैं, फिर भी वह तद्‌गत प्राण है। विरहमें वह करुणाकी मूर्ति है, मिलनमें लीलाका अवतार है। प्रेमीके सामने वह सरल है, गाती है, नाचती है, हिंडोलेपर झूलती है—अपनेको एकदम भूल जाती है। प्रेमकी गम्भीरता आनन्द-किल्लोलसे भर जाती है, पर विरहमें वह गम्भीर है और गोपियोंकी तरह उसमें उतावलापन नहीं रहता। वह सच्ची प्रेमिका है। सूरदासकी राधा तीन लोकसे न्यारी सृष्टि है—अपूर्व, अद्भुत विचित्र।'

राधाके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यका जब हम अध्ययन करते हैं, तब हम पाते हैं कि वैष्णव धर्मके प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्भागवतमें राधाके नामका उल्लेख नहीं है। महाभारत, हरिवंशपुराण, ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराणमें भी राधाका वर्णन नहीं हुआ है। भासके नाटकोंमें राधाका उल्लेख नहीं है, पंचतन्त्रमें राधाका नाम आया है।

'राधा' नामका उल्लेख सर्वप्रथम हमें पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें मिलता है। वैष्णव आचार्य रूपगोस्वामीके प्रसिद्ध ग्रन्थ उज्ज्वल-नीलमणिमें कहा है कि राधाका नाम पहले 'गान्धर्वी' था, यथा—

गोपालोत्तरतापिन्यां यद् गान्धर्वीति विश्रुता।

कृष्णकी आह्लादिनी शक्तिके रूपमें राधाका चित्रण 'हाल' की 'गाथासप्तशती' में प्राप्त होता है।

'मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया
अपनयन् एतासां वल्लभीनामन्यासामपि गौरव हरसि॥'

हे कृष्ण! तुम अपने मुखमारुतसे राधाके मुखपर लगे गोरजका अपनयन करके इन दूसरी स्त्रियोंका अभिमान दूर करते हो।

प्राकृत तथा अपभ्रंशके अनेक ग्रन्थोंमें राधाका नामोल्लेख हुआ है, उदाहरणार्थ पुष्पदन्तका उत्तरपुराण, हेमचन्द्रका प्राकृत व्याकरण आदि।

जयदेव और विद्यापतिने काव्यकी दृष्टिसे राधाको कृष्णकी नायिकाके रूपमें चित्रित किया है।

डॉ० शशिदास गुप्तने 'राधा' शब्दकी ज्योतिषीय व्याख्या की है और विशाखा नक्षत्रको ही राधा माना है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातकके सूरकी राधाके विषयमें निम्न विचार हैं—'सूरने राधाका आध्यात्मिक चित्रण किया है और अद्वैतकी स्थापना भी। वह स्वकीया है और कृष्णकी अन्तरंग शक्ति ह्लादिनी है। वह परकीया नहीं है। वह मानवती और गौरववती है, कृष्णके दक्षिण नायक होते हुए भी अनन्यभावसे उनका ध्यान करती है। मानके साथ वह खण्डित भी है, परंतु उनका मान आशुतोष है। भ्रमरगीतमें वह अन्तर्मुख और शान्त है। यशोदा और गोपियाँ विलाप करती हैं, परंतु राधा गम्भीर और शोकातुर है, नखसे हरिका चित्र उकेरती हुई वह अपना नहीं दूसरोंका सन्देश भेजती है। राधा रससिद्धिकी प्रतीक है।' अतः सूरकाव्यकी प्रमुख नायिका राधा है।

सूरकी राधापर ब्रह्मवैवर्तपुराण, जयदेव, विद्यापति एवं चण्डीदासका प्रभाव है। राधा सूरसागरमें हमारे सम्मुख प्रारम्भमें एक भोली परंतु वाक्‌पटु युवतीके रूपमें आती है। बालक कृष्ण भौंरा-चकडोरी लेकर व्रज-वीथियोंमें निकलते हैं, औचक ही उनकी दृष्टि 'नील बसन फरिया' पहने दिन थोरी, गोरी युवतीपर पड़ती है, प्रथम साक्षात्कारमें ही बालक कृष्ण उस युवती वृषभानु-नन्दिनीपर मोहित हो उठते हैं। दोनोंके नेत्र एक-दूसरेसे मिलते हैं और एक-दूसरेके प्रेममें आबद्ध हो जाते हैं—

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि बर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी।
गए स्याम रबि-तनया कैं तट, अंग लसति चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥

संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझे नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥

(सूरसागर १२९०)

राधाके सौन्दर्यपर मुग्ध कृष्ण राधासे वार्तालाप करते हैं। भोली राधिकाको रसिक-शिरोमनि बातोंमें भुला देते हैं, यथा—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्त्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

(१२९१)

राधा अतीव सुन्दरी है। उसका रूप-लावण्य केवल कृष्णको ही विमोहित नहीं करता है, वरन् यशोदाजी भी राधा-कृष्णकी जोड़ीकी कल्पना करने लगती है। इसी अनुकम्पासे सूर्यकी प्रार्थना करती हैं—

नैन बिशाल, बदन अति सुंदर, देखत नीकी, छोटी।
सूर महरि सबिता सौं, बिनवति, भली स्याम की जोटी॥

(१३२०)

राधा रूप-लावण्यकी प्रतिमा हैं। उनका रूप सौन्दर्य अनुपमेय है। महाकवि सूरने राधाके रूप-माधुर्यका चित्रण कई पदोंमें किया है, यथा—

राधे तेरौ बदन बिराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निसा-पति फीकौ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर, साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ॥
गति मैमंत नाग ज्यौं नागरि, करे कहति ही लीकौ।
सूरदास-प्रभु बिबिध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पीकौ॥

(२३२०)

सूरदासकी राधा न तो विलासिनी है और न ग्वालिन। वह तो स्वकीया नारी है, उसके मनमें प्रेमकी तीव्रता है, कुशलता है, विरहमें गम्भीरता है, प्रेममें अनन्यता है और है कृष्णार्पणमस्तुकी भावना। कृष्णदूत उद्धव आते हैं, उन्हें जो सन्देश राधा देती है, वह उन्हींके अनुरूप है, एक भारतीय नारीके आदर्शानुकूल है—

इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतिया लिखि दीजै।
चरन कमल दरसन नव नवका, करुनासिंधु जगत जस लीजै॥

यही नहीं! वे आगे कहती हैं—

सूरदास प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै।

इस सन्देशमें कितनी पीड़ा है, कैसा त्याग है, कितनी तीव्रता है, कैसी कसक है, सभी कुछ अनिर्वचनीय है।

राधाकी अनन्यता कृष्णकी किसी प्रकारकी बुराई सुननेको भी तैयार नहीं है। गोपियाँ जब कृष्णको दोष देती हैं तो राधा बोल उठती हैं—

सखी री, हरिहिं दोष जनि देहु।
तातैं मन इतनौ दुख पावत, मेरोइ कपट सनेहु॥

राधाके चरित्रका सबसे भव्य रूप कुरुक्षेत्रमें राधाकृष्णके मिलन-प्रसंगमें उजागर हुआ है। राधाकृष्णका साक्षात्कार हुआ, कृष्णकी प्रभुता और महानता, महत्ताको देखकर राधा कुछ न कह सकी। दोनों एक-दूसरेमें तन्मय हो गये। उनकी कीट-भृंगकी गति हो गयी। राधा माधव बन गयी, माधव राधा बन गये—

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, क्रीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई॥
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहि अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज बिहार नित नई नई॥

(४९१०)

कृष्णने तो हँसकर कुछ कह दिया, परंतु बेचारी राधा पश्चात्ताप करके रह गयी, उनके मुख-मृगसे शब्द ही नहीं निकले। सारत: राधाका चरित्र एक भारतीय नारीका प्रतीक है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'सूरकी साहित्य साधना' में अन्तत: राधाके सन्दर्भमें लिखा है—'यह है सूरदासकी राधा। भारतके किसी कविने राधाका वर्णन इस पूर्णताके साथ नहीं किया है। बाल प्रेमकी चंचल लीलाओंकी इस प्रकारकी परिणित सचमुच आश्चर्यजनक है, संयोगकी रसवर्षाके समय जिस तरल प्रेमकी नदी बह रही थी, वियोगकी आँचसे वह प्रेम सान्द्र—गाढ़ हो उठा। सूरदासकी यह दृष्टि अद्वितीय है। विश्व साहित्यमें ऐसी प्रेमिका नहीं है।'

श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव

चान्द्रवर्षके अनुसार वर्षका पाँचवाँ मास श्रावणमास कहलाता है। लोकमें इसे 'सावन' भी कहते हैं। यह मास भगवान् शंकरको विशेष प्रिय है, इसलिये इस मासमें आशुतोष भगवान् साम्बसदाशिवकी पूजा-आराधनाका विशेष महत्त्व है। जो प्रतिदिन पूजन न कर सकें, उन्हें सोमवारको शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये और व्रत रखना चाहिये। सोमवार भगवान् शंकरका प्रिय दिन है।

श्रावणमें सोमवारका व्रत, प्रदोषव्रत तथा शिवपार्थिव-पूजन परम कल्याणकारी है। सोमवारको यदि प्रदोष पड़ जाय तो वह विशेष फलदायक होता है। व्रतके दिन भगवान् शंकरका षोडशोपचार अथवा पंचोपचार-पूजन, पंचाक्षर-मन्त्रका जप, स्तोत्र-पाठ, अभिषेक आदि विशेष रूपसे करना चाहिये। यह सायंकाल (प्रदोषकालमें) करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। दिनभर व्रत रहकर पूजनोपरान्त रात्रिमें एक बार भोजन करे। भोजनमें कुछ लोग एक अन्न खानेका भी नियम रखते हैं अथवा केवल फलाहार करते हैं।

भगवान् शिवका पंचाक्षर मन्त्र '**नमः शिवाय**' श्रावणमासमें विशेष रूपसे जपनीय है। ॐकारसे समन्वित होकर यह षडक्षर कहलाता है। श्रावणमासमें लघुरुद्र, महारुद्र तथा अतिरुद्रपाठ करानेका भी विधान है। यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायीका इसमें विशेष रूपसे पाठ होता है। यह अनुष्ठान पाठात्मक, अभिषेकात्मक तथा हवनात्मक—तीन रूपोंमें होता है। भगवान् शंकरको जलधारा विशेष प्रिय है, अतः श्रावणमासमें जो वर्षाऋतुका समय है, भगवान् शंकरका अभिषेक तथा बिल्वपत्रोंसे उनका अर्चन किया जाता है। बिल्वपत्र तोड़ते समय वृक्षको प्रणामकर निम्न मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।
गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्॥

(आचारेन्दु)

ऐसे ही शिवाराधनामें भस्म एवं रुद्राक्ष-धारणका भी विशेष महत्त्व है।

श्रावणमासमें जिस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना की जाती है, वैसे ही भगवान् विष्णुकी पूजाके साथ ही उनका दोलारोहणोत्सव तथा झूलनोत्सव भी मनाया जाता है। श्रीराम तथा भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरोंमें भी विविध प्रकारकी झाँकियाँ सजायी जाती हैं और उत्सव होता है। इस प्रकार सभी प्रकारकी आराधनाओंकी दृष्टिसे श्रावणमासका विशेष महत्त्व है।

श्रावणमासमें जैसे सोमवारव्रतकी महिमा है। वैसे ही मंगलवारको भी व्रत किया जाता है और उनमें शिवप्रिया भगवती मंगलागौरीका पूजन होता है। विशेष रूपसे विवाहके बाद प्रत्येक स्त्रीको चार-पाँच वर्षोंतक यह व्रत करना चाहिये। यह व्रत अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। भगवती मंगलागौरीको निम्न मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिये—

कुङ्कुमागुरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम्।
नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम्॥

चार वर्षतक लगातार मंगलवारका व्रत करके बादमें उद्यापन करना चाहिये।

श्रावण कृष्ण द्वितीयाको '**अशून्यशयनव्रत**' सम्पन्न होता है। इस व्रतसे वैधव्य तथा विधुरत्वका परिहार होता है। इसमें उपवासपूर्वक भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी आराधना की जाती है। श्रावण शुक्ल तृतीयाके समान ही श्रावण कृष्ण तृतीया भी '**कज्जलीतृतीया**' कहलाती है। इसे कजलीतीज भी कहते हैं। इस तिथिको श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुका पूजन किया जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेशमें विशेषरूपसे कजली तीज मनानेकी परम्परा है। इसमें 'कजरी' का गायन भी होता है। यह एक प्रकारसे लोकोत्सवपर्व है, इस दिन स्त्रियाँ बड़े समारोहसे मेंहदी लगाती हैं और झूला झूलती हैं। इसी तिथिको '**स्वर्णगौरीव्रत**' भी किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थीको '**संकष्ट-चतुर्थीव्रत**' होता है। इसमें भगवान् गणेशकी आराधना होती है।

श्रावणकृष्ण सप्तमीको '**शीतलासप्तमीव्रत**' होता है तथा शीतलादेवीका पूजन होता है और कथा सुनी जाती है।

श्रावणकृष्णपक्षकी एकादशी '**कामदा एकादशी**'-के नामसे विख्यात है। इसके माहात्म्यके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरजीको बताया कि इस दिन व्रत करके तुलसीमंजरीसे भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये, इससे सभी प्रकारके अभीष्ट प्रयोजनोंकी सिद्धि होती है।

श्रावणशुक्लपक्ष पर्वोत्सवोंकी दृष्टिसे विशेष महिमामय है। श्रावणशुक्ल तृतीयाको '**तीज**' का मुख्य पर्व होता है।

उत्तरभारतमें तीजपर्व बड़े उत्साह एवं समारोहके साथ मनाया जाता है। इसे श्रावणीतीज, हरियालीतीज या कजलीतीज भी कहते हैं। यह विशेषरूपसे बालिकाओं और नवविवाहिता स्त्रियोंका पर्व है। मेंहदी लगायी जाती है, नये वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं तथा झूलनोत्सव होता है, प्रकृतिके उल्लासके साथ मानवमनका उल्लास जुड़ जाता है।

श्रावणशुक्ल चतुर्थीको '**दूर्वागणपतिव्रत**' होता है। श्रावणशुक्ल पंचमी '**नागपंचमी**' के नामसे विख्यात है। लोकाचार या देशभेदसे कहीं-कहीं कृष्णपक्षमें यह पर्व होता है। पंचमीतिथि नागोंके आविर्भाव की तिथि है। अत: इस दिन नागोंका विशेषरूपसे पूजन होता है। इससे नागोंसे भय नहीं रहता है। विषदोष भी दूर हो जाता है। नाग भगवान् शंकरके आभूषणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अत: यह प्रकारान्तरसे भगवान् शिवके पूजनका ही प्रतीकरूप है। दीवाल या भित्तिपर नागोंका अंकन किया जाता है, प्रतिमा आदि बनाकर भी पूजन किया जाता है। नागोंको दूध अर्पित किया जाता है और नागपंचमीकी वह कथा सुनी जाती है, जिसमें नागमाता क्रदू और गरुडमाता विनताका वृत्तान्त वर्णित है। राजस्थान आदि कुछ प्रदेशोंमें श्रावणकृष्ण पंचमीको नागपंचमीका त्यौहार मनाया जाता है।

श्रावणशुक्लपक्षकी एकादशी '**पुत्रदा एकादशी**' कहलाती है। इसके माहात्म्यमें आख्यान आया है कि प्राचीनकालमें माहिष्मतीपुरमें महीजित् नामक एक राजा राज्य करते थे, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वे निरन्तर चिन्तित रहते थे। एक बार उन्होंने प्रजाके सामने अपना दु:ख निवेदन किया और पुत्रप्राप्तिका उपाय पूछा। राजा बड़े ही प्रजावत्सल थे, अत: प्रजाजन राजाके कष्टके निवारणके लिये महर्षि लोमशके पास गये और राजाको पुत्रप्राप्ति कैसे हो—इसका उपाय उनसे पूछा, तब महर्षिने कहा कि देखो! राजा महीजित् जो इस समय राज्यका भोग कर रहे हैं, यह इनके किसी जन्मान्तरीय पुण्यका फल है, किंतु पूर्वजन्ममें ये एक धनहीन वैश्य थे। एक बार प्याससे पीड़ित ये किसी जलाशयके पास पहुँचे, संयोगसे वहींपर बछड़ेके साथ एक प्यासी गौ भी पानी पीने आयी, इन्होंने प्यासी गौको वहाँसे हटाकर स्वयं पानी पिया। इसी पापसे आज ये पुत्रहीन हैं, इन्हें चाहिये कि श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पुत्रदा एकादशीका विधिविधानसे व्रत करें, पुत्रकी प्राप्ति होगी। इतना सुनकर प्रजाजनोंने महर्षिको प्रणाम किया और स्वयं पुत्रदा एकादशीका व्रत किया तथा उस व्रतका फल राजाको दे दिया। व्रतके पुण्यप्रतापसे राजाको पुत्र प्राप्त हुआ।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको '**रक्षाबन्धन**' का पर्वोत्सव मनाया जाता है और इसी तिथिको श्रावणी उपाकर्म होता है। रक्षाबन्धनमें पराह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि इस दिन प्रात: नदी आदिमें सविधि स्नान करके तर्पण आदि करे। दोपहरमें निर्मित रक्षासूत्रकी प्रतिष्ठाकर उसका पूजन करे और ब्राह्मणसे हाथमें बँधवाये। इस दिन बहनें भी भाइयोंको रक्षा बाँधती हैं।

श्रावणशुक्ल पूर्णिमा उपाकर्मका मुख्य काल है। वेदपारायणके शुभ कार्यको उपाकर्म कहते हैं। यह यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर ही होता है। इस दिन प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। इस दिन सर्वप्रथम तीर्थकी प्रार्थनाके अनन्तर पंचगव्य प्राशनकर प्रायश्चित्त-संकल्प एवं हेमाद्रि स्नानसंकल्पसे दशविध स्नान होता है। तदनन्तर अरुन्धतीसहित ऋषिपूजन, सूर्योपस्थान, ऋषितर्पण, यज्ञोपवीतपूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी विधि है। धारण किये यज्ञोपवीतको विसर्जित करके प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, यज्ञोपवीत धारण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

(ब्रह्मोपनिषद्)

इस प्रकार श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको श्रावणमास पूर्ण होता है। इस मासके कृत्योंके सम्बन्धमें महाभारतमें बताया गया है कि श्रावणमें पूरे मासपर्यन्त संयम-नियमपूर्वक जो एकभुक्तव्रत करता है और प्रतिदिन भगवान् शंकरका अभिषेक करता है, वह स्वयं भी पूजनीय हो जाता है तथा कुलकी वृद्धि करते हुए उसका यश एवं गौरव बढ़ानेवाला हो जाता है—

श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
तत्र तत्राभिषेकेण पूज्यते ज्ञातिवर्धनः॥

(पुरुषार्थचिन्तामणि)

'सुख' सम्पन्नताका मोहताज नहीं

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि मनुष्य-शरीर सर्वेश्वरकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। भगवान्ने मनुष्यको दस इन्द्रियाँ, एक मन और बुद्धि देकर सर्वगुणसम्पन्न बनाया है। फिर भी बहुतेरे लोग यह मानते हैं कि मनुष्य धन, सम्पत्ति और वैभवादिसे ही सम्पन्न बनता है और इनके अभावमें वह दरिद्रताका दंश ही झेलता है। दूसरी ओर संत स्वभाववाले लोग संतोषको ही परमधनकी संज्ञा देते हैं। संतप्रवर श्रीकबीरदासजी तो यहाँतक कहते हैं कि मनुष्यके पास जब सन्तोषरूपी सम्पदाका आविर्भाव होता है, तब सब प्रकारके धन धूलके समान हो जाते हैं अर्थात् सन्तोष सबसे बड़ा धन है, जिसके मिलनेपर किसी धनको प्राप्त करना शेष नहीं रहता—

गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवे संतोष धन तो सब धन धूरि समान॥

आज चारों ओर अशान्तिकी ज्वाला धधक रही है। हर आदमी अशान्त नजर आता है; क्योंकि वह निरन्तर किसी-न-किसी वस्तु अथवा परिस्थितिका अभाव अनुभव कर रहा है। यह एक विडम्बना ही कही जायगी कि सब कुछ होते हुए भी एक अजीब तरहका अभाव मनुष्यको घेरे हुए है। कोई भी व्यक्ति पूरी तरह संतुष्ट नजर नहीं आता। किसीसे भी बात करके देख लो, हमें यही सुननेको मिलेगा कि बाकी सब तो ठीक है, बस एक अमुक चीजकी कमी है। यह भी देखनेको मिलता है कि सम्पन्नतामें जीवन जीनेवाला व्यक्ति अधिक दुखी है और विपन्नतामें जीवन व्यतीत करनेवाले लोग अपेक्षाकृत कम दुखी हैं। सम्पन्न लोग परिस्थितियोंका रोना अधिक रोते हैं जबकि विपन्नतामें जीनेवाला प्राणी शिकायत कम करता है। वह अपना जीवन अव्यक्त शक्तिके प्रति आस्थावान् होकर बिताता है और अपने कार्यमें मग्न रहता है।

इस बातको एक उदाहरणद्वारा समझा जा सकता है। लगभग एक दशक पूर्व एक सत्संगमें स्वामी रामसुखदासजी अपना अनुभव बताते हुए कह रहे थे कि वे एक बार जाने-माने उद्योगपतिके साथ किसी कार्यक्रममें जा रहे थे। मार्गमें एक व्यक्ति लेटा हुआ था। कारके चालकने तेज हॉर्न बजाया परंतु उस व्यक्तिकी नींद नहीं टूटी। पास पहुँचकर चालकने कार रोकी, फिर उतरकर उसे जगाया। उद्योगपतिने यह दृश्य देखकर कहा—'स्वामीजी! मुझे इस व्यक्तिसे ईर्ष्या हो रही है।' मैंने पूछा—'इस बेचारे मजदूरसे आपकी ईर्ष्याका क्या कारण हो सकता है!' उन्होंने कहा—'स्वामीजी! आपके आशीर्वादसे घरमें सब प्रकारकी सुविधा है। सोनेके लिये पलंगपर मखमली गद्दा है, पर नींदकी गोली लेता हूँ फिर भी निगोड़ी नींद आनेका नाम नहीं लेती और इसे देखिये, इस कोलाहलभरे रास्तेमें कंकड़-पत्थरोंके बीच जमीनपर इतनी मीठी गहरी नींदमें सो रहा है। आप ही बतायें कि शान्तिभरी निद्राके लिये सम्पन्नता और पैसा कब काम आया?'

यह एक कड़वी सच्चाई है कि सम्पन्नताके बावजूद भोजन और नींद, इन दोनोंके आगे मनुष्य विवश हो जाता है। इससे मनुष्यका यह भ्रम टूट जाता है कि धन-वैभवमें सुख है। हम देखते हैं कि साधु-संत-मुनिजन सब धन-वैभवको छोड़कर अपनी चेतनाको विराट् चेतनासे जोड़ते हुए सुखकी अनुभूति करते हैं। अभावमें जीनेवालेको कठिनाई अवश्य होती है, परंतु जिसे अभाव नहीं है, वह सुखी रहता है भगवान्की रजामें रहकर और संतोषपूर्वक जीवन जीकर। दूसरी ओर सम्पन्न लोग चिन्तातुर दिखायी देते हैं; किसीको जमकर भूख नहीं लगती तो किसीको गहरी और मीठी नींद नहीं आती। किसीको संतान न होनेका दुःख सता रहा है तो किसीकी बिगड़ैल संतानने जीना हराम कर रखा है। वे सोचते हैं कि इससे अच्छा तो हमारे संतान ही नहीं होती। गुरुवाणी कहती है—

बड़े-बड़े जो दीखैं लोग। तिनको व्यापै चिंता रोग॥

कहनेका तात्पर्य है कि मनुष्यकी यह प्रवृत्ति है कि वह कभी किसी भी परिस्थितिसे सन्तुष्ट नहीं होता,

यहाँतक कि एक सम्पन्न व्यक्ति भी अपनी सम्पन्नतामें विपन्नताके ही दर्शन करता है। उसकी नजर हमेशा उस वस्तुपर रहती है, जो उसके पास नहीं होती और सब चीजें तो एक वैभवशाली व्यक्तिके पास भी नहीं हो सकतीं। इस बातको हम एक बोधकथाके माध्यमसे भी समझ सकते हैं। सुन्दरवनमें एक कौआ रहा करता था, उसने पहले कभी बगुलेको नहीं देखा था। बरसातका मौसम आया तो दूर देशसे एक बगुला उड़कर उस सुन्दरवनमें आया। उसे देखकर कौएको बड़ा दुःख हुआ। उसे लगा कि उसका रंग कितना काला है, जबकि बगुला कितना गोरा और सुन्दर है। उसने बगुलेके पास जाकर कहा—बगुले भाई! आप तो बहुत गोरे हैं और देखते ही मनको मोह लेते हैं। यह देख-सुनकर आपको बहुत सुख मिलता होगा। बगुला बोला—'अरे! मैं तो पहलेसे ही दुखी हूँ। जरा, तोतेको देखो, वह कितने सुन्दर दो रंगोंसे रँगा है। मुझपर तो एक ही रंग है।'

अब दोनों मिलकर तोतेके पास पहुँचे और उसकी सुन्दरताकी प्रशंसा करते हुए पूछा—'हे तोते! आपको अपनी प्रशंसा सुनकर कितना आनन्द मिलता होगा। आप बड़े सौभाग्यशाली हैं, जो आपको भगवान्ने इतना सुन्दर और मोहक बनाया है।' तोता बोला—'अरे! मैं तो तुम दोनोंसे ज्यादा दुखी हूँ। जरा, मोरको देखो, वह कितने सुन्दर रंगोंसे रँगा हुआ है।' अब तीनों मिलकर मोरके पास पहुँचे तो देखा कि मोरको मारनेके लिये शिकारी उसके पीछे लगा हुआ है। मोरके सुरक्षित होनेपर उन्होंने मोरसे अपनी बात कही तो मोर बोला—'भाइयो! मेरा जीवन तो मेरे मनमोहक रंगों और पंखोंके कारण दूभर और असुरक्षित हो गया है। ये रंग न होते तो आज मैं भी तुम लोगोंकी तरह चैनकी बंसी बजा रहा होता।' अब उन सबकी समझमें यह बात आयी कि भगवान्ने हर प्राणीको मौलिक और विशिष्ट पहचान-वाला प्राणी बनाया है। किसीको छोटा अथवा बड़ा नहीं बनाया है। यदि हम असन्तुष्ट रहना चाहें तो हर परिस्थितिमें असन्तोषके कारण ढूँढ़ लेंगे, पर यदि सन्तुष्ट रहना चाहें तो भी हर परिस्थितिमें सन्तोषके कारण उपलब्ध हैं।

दुनियाँमें ऐसे कई लोग मिल जायँगे, जो अति सम्पन्न होते हुए भी सादगीसे आम लोगोंकी तरह रहना पसन्द करते हैं। विश्वकी जानी-मानी कम्पनी ईबेके संस्थापक पियरे ओमिदयार कहते हैं कि मेरे पास इतना धन है कि दुनियाकी महँगी-से-महँगी गाड़ी खरीद सकता हूँ, पर जब आपको यह पता चलता है कि आप सब कुछ खरीद सकते हैं तो आपकी कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती। तड़क-भड़कसे दूर रहनेवाले पियरे कहते हैं कि जीवनमें सादगी अमूल्य होती है। विश्वकी एक अन्य जानी-मानी कम्पनी फेसबुकके संस्थापक मार्क जुकरबर्ग अपनी फेसबुक प्रोफाइलपर लिखते हैं कि वह कम-से-कम पारिश्रमिक लेनेमें विश्वास करते हैं और अपनी सारी इच्छाओंको दफन करना चाहते हैं। वह अक्सर साधारण ही शर्टमें नजर आते हैं। वे कम कीमतवाली फॉक्सवैगन जीटीआई कार चलाते हैं।

भारतकी प्रसिद्ध आईटी कम्पनीके मालिक अपने कार्यालय जानेके लिये ऑटो रिक्शाका इस्तेमाल करते हैं। वे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयोंका दान करते हैं पर अपनेपर कुछ खर्च करना उन्हें पसन्द नहीं है। एक अन्य जानी-मानी कम्पनी एप्पलके सीईओ टिम कुक २४०० करोड़ रुपयेके मालिक हैं, पर फिजूलखर्ची कतई नहीं करते। अमेरिकामें इनका घर मात्र २०९५ स्क्वायर फीटमें है। वे कहते हैं कि मैं अपनी पहचान साधारण रहन-सहनसे बनाना चाहता हूँ। वहीं दुनियाकी एक प्रसिद्ध कम्पनी टम्बलरके संस्थापक डेविड कार्पके रहन-सहनको देखकर कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता कि वे अरबपति हैं। वे विलासितावाली वस्तुओंका उपभोग नहीं करते और अपनी आवश्यकताओंको न्यूनतम रखनेमें विश्वास करते हैं। इन सब धनी व्यक्तियोंकी जीवन-शैलीसे यह बात तो प्रमाणित होती ही है कि 'सुख' सम्पन्नताका मोहताज नहीं है। वह हमारी सोच और सन्तुष्टिका हमराही है।

दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ और पूर्णब्रह्म श्रीरामभद्र

(श्रीनिमाइचरणजी मिश्र)

दारुब्रह्म श्रीजगन्नाथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठान स्वप्रकाश परमात्मा परब्रह्म-स्वरूप हैं। वे ही वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्यादि सभीके परमाराध्य एवं सर्वोपरि सनातन धर्मके प्राणकेन्द्र हैं।

पुरुषोत्तम-क्षेत्र अथवा नीलाचल-क्षेत्र सृष्टि, स्थिति तथा संहारका मूलायतन है, आधार-क्षेत्र है। इस क्षेत्रका आकार शंखके समान है, इसलिये यह शंख-क्षेत्र भी कहलाता है। सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वप्रथम स्वयं नारायण साकार-रूप धारण करनेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथजीके रूपमें यहीं आविर्भूत हुए।

इस क्षेत्रमें महान् वैष्णव भक्त महाराज इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर नीलमेघके समान श्यामसुन्दर

शंखचक्रधारी भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेके लिये नीलाचलकी गुफामें विराजमान रहते हैं। करुणासागर भगवान् जनार्दन काष्ठनिर्मित बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्रकी प्रतिमाओंके साथ स्वयं भी दारुमय विग्रह धारण करके जगत्का कल्याण करते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य पापोंके सुदृढ़ बन्धनसे भी मुक्त हो जाता है। भगवान्के पादपद्म समस्त चराचर जगत्के लिये वन्दनीय हैं। वे सबके आश्रय हैं। वे चेष्टारहित काष्ठशरीर धारण करके भी दिव्य लीलाविलास करनेवाले हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें श्रीजगन्नाथजीको श्रीरामावताररूपमें स्वीकार किया गया है—

प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

(वा० रा० १।१८।१०)

कौसल्यादेवीने सर्वलोकवन्दित श्रीजगन्नाथजीको दिव्य लक्षणोंसे युक्त श्रीराम-रूपमें जन्म दिया। वहीं पुनः वर्णन आया है कि जब अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रने लीला-संवरणकर परमधाम-गमनका निश्चय किया तब विभीषणादि भक्तगणोंने भगवान्से कहा—'हे प्रभो! आपकी अनुपस्थितिमें हम किसकी आराधना करेंगे?' तब कृपावतार पूर्णब्रह्म प्रभु श्रीरामने उन्हें अन्तिम उपदेश देकर कहा—

किं चान्यद् वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महाबल।
आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥
आराधनीयमनिशं देवैरपि सवासवैः।

(वा० रा० ७।१०८।३०-३१)

'हे महाबली राक्षसराज विभीषण! मैं आप सबको अधिक क्या कहूँ? हमारे इक्ष्वाकुकुलके कुलदेवता भगवान् श्रीजगन्नाथ हैं। इन्द्र आदि सकल देवता भी सर्वदा उनकी आराधना करते रहते हैं। आप भी सदा-सर्वदा श्रीजगन्नाथजीकी आराधना करते रहें।'

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें विभीषणजीद्वारा की गयी श्रीजगन्नाथ-आराधनाकी परम्परा आज भी प्रचलित है। रथयात्राके दिन रथारोहणके समय विभीषणको दर्शन देनेके लिये स्वयं श्रीपति प्रभु दक्षिणाभिमुख होकर रथारोहण करते हैं।

वामदेवसंहितामें कहा गया है कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामभद्र जब अपनी लीला समाप्त करके सरयूनदीके किनारेपर परम शान्त होकर स्थित थे, उस समय

उपस्थित होकर प्रभुभक्त हनुमान्‌जीने प्रभुके साथ जानेके लिये प्रार्थना की और उनकी प्रार्थना सुनकर राघवेन्द्र श्रीरामजी बोले—

तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह चिरंजीवी भव प्रिय।
यावच्च मेदिनी तिष्ठेज्जीववान् भव वानर॥
पश्चात् त्वमेव ब्रह्मापि भविष्यसि न संशयः।
मत्स्थानं चोत्कले देशे पुरुषोत्तमं विश्रुतम्॥
तत्क्षेत्रमध्ये त्वं तिष्ठ कुमुदं नाम मत्प्रियम्।
तव समीपं गच्छामि मन्मूर्तिदर्शनं कुरु॥
दर्शं दर्शं प्रति ब्रह्मन् तत्स्थानं मत्स्वरूपकम्।
नारायणस्वरूपं मे पश्यसि प्लवगोत्तम॥

(वा० सं० ३६—३९)

भाव यह है कि 'हे प्रिय वानर! तुम चिरंजीवी होकर मेदिनीके रहनेतक जीवित रहो। अन्तमें तुम भी ब्रह्मा होओगे, इसमें सन्देह नहीं है। उत्कल देशका पुरुषोत्तम-क्षेत्र मेरा स्वधाम है, वहाँ तुम मुझे प्रिय लगनेवाले कुमुद नामसे प्रतिष्ठित रहो। मैं वहाँ तुम्हारे पास ही जाऊँगा। वहाँ तुम मेरा श्रीजगन्नाथजीके रूपमें दर्शन करना। हे प्लवगोत्तम (वानरश्रेष्ठ)! पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें तुम समस्त ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करके मेरे नारायणस्वरूपको जान सकोगे।'

उसी दिनसे प्रभुभक्त हनुमान् श्रीक्षेत्र आ गये और श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें लगे रहे। आज भी पुरुषोत्तम श्रीक्षेत्रमें श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके सन्निकट सिंहद्वार—स्वर्गद्वारके रास्तेमें बायीं ओर श्रीकुमुद महावीरजीका प्रसिद्ध मन्दिर विद्यमान है।

एकाम्रपुराण तथा स्वर्णादिमहोदय आदि ग्रन्थोंमें वर्णन है कि अत्याचारी रावण आदि राक्षसोंका संहारकर जब श्रीरामभद्र अयोध्यामें सिंहासनपर अभिषिक्त हुए तो कुलगुरु वसिष्ठके उपदेशसे ब्रह्महत्याके निवारणके लिये उन्होंने पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जाकर एकाम्रकाननमें श्रीलिंगराज भगवान्‌की आराधना की और श्रीरामेश्वर महादेवकी स्थापना की। प्रभु श्रीरामकी शिवाराधनासे प्रसन्न होकर श्रीलिंगराज महादेव प्रतिसम्वत्सर चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन महिषमर्दिनी-शक्ति और दोलगोविन्द-विष्णुके साथ श्रीरामजन्मोत्सवकी झाँकीका दर्शन करनेके लिये आया करते हैं। यह भुवनेश्वर-लिंगराज महादेवकी प्रसिद्ध रथयात्रा है।

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें श्रीरामजन्मोत्सवका महासमारोह बड़े ही उत्साहसे सम्पन्न होता है। चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन माता कौसल्याके प्रीत्यर्थ श्रीजगन्नाथजीका विशेष पूजन किया जाता है। नवमीके दिन मध्याह्न-धूपके बाद जय-विजय-दरवाजा बन्द किया जाता है। भूमिशोधन करनेके बाद पूजक—सेवक राघव-मण्डलका निर्माण करते हैं। दक्षिण गृहमें श्रीरामजीको भोग निवेदन किया जाता है। उसके बाद प्रभु श्रीरामजीको रत्नवेदी-(श्रीजगन्नाथजीके सिंहासन)-में विराजमान कराया जाता है। तब श्रीजगन्नाथजीसे 'श्रीराम-जन्मोत्सव' प्रारम्भ करनेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की जाती है—

आज्ञापय महाबाहो रामजन्मोत्सवाय वै।
रामप्रतिकृतिं तावद्रावणादिविनाशिनीम्॥

(नीलाद्रिमहोदय ३५।६)

इस प्रकार चैत्र शुक्ल नवमीके दिन श्रीराम-जन्मोत्सव, दशमीके दिन यज्ञरक्षा, एकादशीके दिन सीता-विवाह, द्वादशीके दिन वनवास, चतुर्दशीके दिन मायामृग, पूर्णिमाके दिन लंकापोड़ि, वैशाख कृष्ण प्रतिपदाको सेतुबन्ध-निर्माण, द्वितीयाको रावण-वध तथा पुष्यसंयुक्त नक्षत्रमें श्रीरामजीका अभिषेक-महोत्सव किया जाता है। इसके अलावा पौष-पूर्णिमाके दिन श्रीजगन्नाथजीका श्रीरामके समान ही पुष्याभिषेक किया जाता है। श्रीरघुनाथ-वेषमें श्रीजगन्नाथजी श्रीरामचन्द्र और श्रीबलभद्रजी श्रीलक्ष्मण तथा श्रीसुभद्राजी सीता एवं श्रीसुदर्शनजी श्रीहनुमान्-तत्त्वसे उपासित होते हैं। (नीलाद्रि-अर्चन-चन्द्रिका—रामनवमी-कल्प)

श्रीचैतन्यदेवके अन्तरंग पार्षद ज्ञानमार्गके परम संत श्रीबलरामदासजीने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके जगमोहनमें बैठकर श्रीजगन्नाथजीकी आज्ञाके अनुसार 'जगमोहन-रामायण' लिखी है। इसमें उन्होंने श्रीजगन्नाथजीका श्रीरामभद्रके रूपमें विशेषरूपसे वर्णन किया है—

श्रीराम जाणिले मुं ये अटे जगन्नाथ।
सीता सुभद्रा ये बेनि अटन्ति संयात॥

लक्ष्मण ये बलराम एक संग होन्ति।
एसनेक मते तहुं देव चलियान्ति॥

(जगमोहन-रामायण)

एक बार संत तुलसीदासजी तीर्थाटन करते हुए इस पवित्र श्रीक्षेत्रपुरीमें पधारे। वहाँ श्रीमन्दिरमें अपने आराध्य श्रीरामरूपका दर्शन न कर श्रीजगन्नाथजीके अप्राकृत दारुब्रह्मस्वरूपका दर्शन करके निराश-मनसे जब लौटने लगे, तब वापसीमें एक वानर उनका उत्तरीय वस्त्र लेकर चला गया। मर्कटकी ऐसी चपलता देखकर संत श्रीतुलसी विरक्तसे हो उठे। उसी समय श्रीजगन्नाथजीके एक सेवकने वहाँ पहुँचकर वानरसे कहा—'हनुमान्! संत तुलसी प्रभु श्रीरामजीके अत्यन्त प्रिय हैं। उनके उत्तरीय उन्हें लौटा दो।' इतना कहते ही वानरने उत्तरीय लौटा दिया। इसपर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे—श्रीमन्दिरके सेवक क्या उन्हें जानते हैं, यदि जानते हैं तो कैसे? ऐसा विचारकर वे पुन: सेवकसे भेंट करनेके लिये श्रीमन्दिरके भीतर आये, परंतु सेवकके साथ साक्षात् नहीं हुआ। इससे उन्हें दु:ख हुआ, तब उन्होंने तुलसीचौरा नामक एक ग्राममें विश्राम किया। अपने रामरूपके प्रति तुलसीदासजीकी अनन्य भक्तिभावना देखकर, परम प्रसन्न हो परम कारुणिक परब्रह्म श्रीराघवेन्द्र श्रीराम स्वप्नमें अवतीर्ण होकर बोले—'हे संत! श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें आपने जिस निर्गुण ब्रह्मकी स्थापना की है, वे ही आपके अभिलषित योगिजन-दुर्लभ नीलाद्रिकन्दरानन्द पुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथ हैं। श्रीमन्दिरमें उत्तरीय ले जानेवाले मर्कट हनुमान् थे और विभीषणने सेवकके रूपमें उन्हें आपका परिचय प्रदान किया था।' संत तुलसी अपने प्राणधन प्रिय प्रभुके दर्शनमें आत्मविह्वल हो गये। उस दिन एकादशी तिथि और बृहस्पतिवार था। संत तुलसी श्रीमन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शनमें पूर्णकाम और सत्यसंकल्प हो गये।

आज भी संत तुलसीदास-सम्प्रदायकी बड़लता मठके संत-महात्मा श्रीजगन्नाथजीके पहुड़के समय (शयन कराते समय) श्रीरामस्वरूपका ध्यान करके वन्दना करते हैं—

भाँति भाँति प्रभु बेद पचारी। पहुड़े हे प्रभु अवध बिहारी॥

इत्यादि, पुनश्च, श्रीमन्दिरसे बाहर आनेके समय गाते हैं—

चल सखि सोए अवध किसोर।
जनकनन्दिनी चरण पलंके सेवा करे निरन्तर॥

इसके अलावा सानलता मठ, लाउणि मठ, पापुड़िआ मठ, बलगण्डिलता मठ, रेवासा मठ और सुन्दरदासमठके संत-महात्मा भी श्रीजगन्नाथजीको अपने इष्टदेव रामजीके रूपमें ग्रहण करते हैं और इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

अनुग्रहाय लोकानां नानारूपधरं प्रभुम्।
वन्देऽहं जानकीकान्तं स्फुटिताम्बुजलोचनम्॥
पित्राज्ञया वनं प्राप्य कृत्वा सागरबन्धनम्।
निहतो रावणो येन तस्मै रामाय ते नमः॥
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि जगन्नाथ नमोऽस्तु ते॥
वेदान्ते प्रतिपाद्यं यत् पण्डितैर्ज्ञानमण्डितैः।
नीलाचलेऽस्मिन् विमले प्रत्यक्षं तद् भजामहे॥

ऐसे करुणावरुणालय जगत्के नाथ प्रभु श्रीराम सबकी भलाई करें।

भगवान् श्रीकृष्णका नटवरवेश

(डॉ० श्रीरामनिवासजी पाठक)

मोर कै पंख सुशोभित श्याम, लसै नटराज शरीर अनूपा।
कर्ण-कनेर-पीताम्बर सोहत वक्ष वैजन्ती लसै सुर-भूपा॥
वेणु के छिद्रन में अधरामृत पूरि रहे हरि दिव्यस्वरूपा।
गोपसमेत प्रवेश वृन्दावन गावत कीर्ति नशै भव-कूपा॥

कहानी—

मन्त्र-सिद्धि

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

मुझे अपनी पर्वतीय यात्राके समय कुछ पन्ने देखनेको मिले थे। उस समय मैं गंगोत्तरी जा रहा था। भैरवचट्टी छोटी है और गंगोत्तरी पहुँचनेके लिये वह अन्तिम चट्टी है। वहाँ प्रातः पहुँचा था। मध्याह्न विश्राम, भोजन करके चल देना था। इस अल्प समयमें तीन संन्यासियोंके एक यात्रीदलसे परिचय हो गया। उनमें जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने वे पन्ने दिखलाये थे।

उनको वे पन्ने नेपाल होकर कैलास जाते समय मुक्तिनाथमें एक नेपाली भारवाहकसे मिले थे और उसने बताया था कि कोई भूटानी बकरी चरानेवाला कहीं पर्वतीय गुफासे उन्हें उठा लाया था। वह चरवाहा और वह नेपाली दोनों अपठित थे। वृद्ध संन्यासीने उन्हें सँभालकर रखा था।

पन्ने थोड़े ही थे और उनमें भी आगे-पीछेका भाग भींगकर ऐसा हो गया था कि पढ़ा नहीं जा सकता था। दैनन्दिनीके अंश वे नहीं थे; क्योंकि उनमें तिथि नहीं थी और क्रमबद्ध कुछ लिखा भी नहीं था। लेकिन लिखनेकी शैली दैनन्दिनी-जैसी थी। तभी तो वर्षों पश्चात् उसके लेखकको लिखनेका स्मरण हुआ जान पड़ता था।

एक बात और—मैं यात्रामें था। मुझे गंगोत्तरी पहुँचनेकी त्वरा थी। वे तीनों संन्यासी गंगोत्तरीमें मुझसे दूर ठहरे और कब नीचे लौट गये, मुझे पता नहीं। मैंने कोई प्रतिलिपि उन पन्नोंकी नहीं की। केवल स्मृतिके आधारपर ही उसका विवरण लिखने बैठा हूँ! प्रयत्न कर रहा हूँ कि उन पन्नोंका विवरण उसी ढंगसे और जहाँतक बन पड़े उन्हीं शब्दोंमें लिखा जाय, जैसा उन पन्नोंमें था।

× × ×

माता-पिता बचपनमें अनाथ छोड़ गये। मुझे भीख नहीं माँगनी पड़ी, यही क्या कम है। पढ़ता मैं कहाँसे; किंतु अपने इस स्वभावका क्या करूँ? जो आश्रय देगा, खिलाये-पहनायेगा, वह काम लेगा ही। काम करनेमें मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन आश्रयदाता सिरपर बैठाकर तो रखेगा नहीं। वह डाँटेगा, तिरस्कार करेगा और भगवान्ने स्वभाव ऐसा दे दिया कि किसीकी आधी बात सही नहीं जाती। वे सम्बन्धी थे, बड़े थे, विद्वान् थे। उन्होंने डाँट दिया तो क्या हो गया? समझता हूँ यह सब; किंतु सहन जो नहीं होता। उनसे झगड़कर आया हूँ। अब वहाँ जाना तो सम्भव नहीं है।

× × ×

केवल छः पैसे पास थे। तीन दिन चने चबाकर काट दिये। अब! गरमीके दिन हैं। कहीं वृक्षके नीचे पड़ा रहा जा सकता है। घरके नामपर तो खण्डहर भी नहीं है। करूँ क्या! रोजी-रोजगार कुछ चाहिये पेटके गड्ढेको भरनेके लिये। व्यापारके लिये पूँजी न हो तो परिचय अवश्य चाहिये। वह कहाँसे आये? नौकरी! लेकिन अठारह वर्षके केवल साधारण हिन्दी पढ़े लड़केको जो नौकरी मिलेगी, उसमें नौकरका अपमान न हो, हो सकता है? अपमान तो होगा ही। वह सहा जायगा?

एक उपाय सूझता है—किसी साधुका शिष्य बना जा सकता है, लेकिन यदि वहाँ न टिक सका, वहाँ भी अपमान मिला तो? भिक्षा माँगी जा सकेगी? नहीं, यह करनेकी अपेक्षा उपवास करके मर जाना सरल है।

× × ×

इधर आठ दिनसे आम खाकर आनन्दसे रहा हूँ। वृक्षोंपर चढ़ा न जाय, पत्थर न मारे जायँ तो अपने आप टपके, आँधीसे गिरे आम उठाकर ले लेनेमें कोई बगीचेका रक्षक बाधा नहीं देता। अब जबतक आमका मौसम है, पेट पालनेकी चिन्ता तो गयी।

कल मिला वह साधु गँजेड़ी था। उसका प्रलोभन व्यर्थ था। मैं ऐसे व्यक्तिका न शिष्य बन सकता, न उसकी सेवा कर सकता। लेकिन उसकी एक बात ठीक थी कि मन्त्रानुष्ठानके बिना सिद्धि नहीं मिल सकती।

सुखी, सम्मानित जीवन बितानेके लिये मन्त्र-सिद्धि मेरे लिये आवश्यक है। कौन दिखलायेगा इसका मार्ग? साधुने कुछ नाम लिये हैं, कुछ पते बतलाये हैं। मुझे उन सबके पास भटकना तो पड़ेगा। भटके बिना कोई पारस पाता है कभी?

× × ×

ओह! मैं भी किस प्रपंचमें पड़ गया। तीन वर्षसे भटक रहा हूँ। लम्बी-चौड़ी बातें बहुत बनायी जाती हैं; किंतु भीतर तथ्य कुछ नहीं है। बहुत हुआ तो थोड़ी हाथकी सफाई, कुछ ओषधियोंके प्रयोग, कुछ धोखाधड़ी। अधिकांश धूर्त हैं, कामिनी-कांचनके क्रीतदास और अपने नाम-रूपकी पूजाके भूखे! और वे सिद्ध कहलाते हैं। मेरे पास क्या रखा है कि कोई मुझे ठगना चाहेगा। मुझे शिष्य-सेवक बनानेको अवश्य उत्सुक मिलते हैं ये लोग।

मैंने सेवा की है और सेवाने ही उनका भण्डा फोड़ा है। मैं उनके दम्भमें सम्मिलित हो जाऊँ? छिः! मुझे घृणा है इससे! चोर-डाकू ही तो हैं ये सब एक प्रकारके। इनमें अनेक तो आचारहीन हैं। इनका दम्भ, इनकी कीर्ति, इनकी पूजा—लेकिन समाज तो मूर्ख है। जो बिना श्रम किये अत्यधिक लाभ चाहते हैं, वे ठगे जायँगे ही।

× × ×

'हे भगवान्!' आज प्राण बच गये, यही बहुत हुआ और ढूँढ़ो मन्त्र-सिद्ध! कितना प्रेम-प्रदर्शन किया था इस हत्यारे कापालिकने। मैं इसकी ख्याति सुनकर इतनी दूर आसाम आया और यह जैसे उल्लाससे मिला, मिलना ही चाहिये था, उसको तो अनायास बलिपशु मिल गया था।

स्मरण करके अब भी रोमांच हो आता है। मुझे अर्धरात्रिको श्मशान ले गया था वह। पता नहीं क्या-क्या पूजन-हवन करता रहा और तब एक धागेका सिरा मेरे हाथमें बाँधकर धागेको लेकर दूर कहीं अन्धकारमें जा छिपा। बड़ा लम्बा धागा था। उसमें एक अण्डा, मुर्गा, बकरा और सबसे अन्तमें मैं। मैं धागेको अन्धकारमें देख नहीं पाता था; किंतु अण्डा फट्से फूटा तो चौंका। कुछ क्षण पश्चात् मुर्गा चीखकर मर गया। मैंने हाथसे धागा खोलकर झट पासके वृक्षकी जड़में बाँध दिया। मेरे वहाँसे हटते-हटते बकरा चिल्लाया और गिर पड़ा। मैं भागा—दूरसे देखा कि वह वृक्ष ऊँची लपटोंसे घिर गया है, जिसमें मैंने अपने हाथका धागा बाँधा था।

श्मशानसे भागकर यहाँ आ छिपा हूँ। रात्रिकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी यहाँसे भागनेके लिये। कान पकड़े—अब किसी तान्त्रिकके चक्करमें नहीं पड़ूँगा।

× × ×

भगवान् भी कितने दयालु हैं। मुझे कहाँ पता था इन उदार विद्वान्का। मैं तो विपन्न, क्षुधा-मूर्छित मार्गपर पड़ा था। ये कृपालु मुझे उठा लाये। तीन दिनसे इनके यहाँ टिका हूँ। मन्त्रानुष्ठानका ठीक मार्ग बतलाया है इन्होंने। इतना भटकनेके पश्चात् आज लगा है कि मैं अपने मार्गको देख सका हूँ।

ये शास्त्रज्ञ न मिलते, मुझे कहाँ पता था कि मन्त्रोंमें इतना झमेला है। अच्छा है कि मुझे अपना राशिनाम स्मरण है। किसे कौन-सा मन्त्र जप करना चाहिये, इसमें उसकी आवश्यकता पड़ती है, यह बात मेरी कल्पनामें नहीं थी। पता नहीं इन्होंने क्या-क्या समझाया है। मन्त्रोंमें ऋणी-धनी आदि जाने कितने निर्णय आवश्यक हैं। मुझे केवल इतनेसे प्रयोजन है कि मेरे उपयुक्त मन्त्र ये निर्णय करके बतला दें।

× × ×

मैंने समझा था, उतनी सरल बात नहीं है। अंगन्यास, करन्यास, अक्षरन्यास, मातृकान्यासादि कितने तो न्यास हैं। मुद्रा है और यन्त्र-कवचादि हैं मन्त्रके साथ। फिर मन्त्रका उत्कीलन, जागरण, सप्राणीकरण है। कितने भी विस्तार हों, कितनी भी उलझन हो, करना है तो यह सब सीखना भी है। मैं सीखूँगा—समय ही तो लगेगा।

बस एक बात अटपटी है। ये श्रद्धेय स्वयं दीक्षा देना नहीं चाहते। मेरा आग्रह-अनुरोध सब व्यर्थ चला

गया है। मुहूर्त इन्होंने निकाल दिया है। बिना दीक्षाके मन्त्र सप्राण नहीं होता और दीक्षा लेना है एक साधुसे। जबसे आसामके उस तान्त्रिकका सम्पर्क मिला, साधुमात्रसे मुझे घृणा हो गयी है। साधुओंसे भय लगता है। लेकिन साधुने दीक्षा देना स्वीकार कर लिया है। दूसरा कोई मार्ग दीखता नहीं है।

× × ×

आज पूरे पन्द्रह वर्ष हो चुके। मेरा अनुष्ठान क्यों फलप्रद नहीं हो रहा है? मैंने कहीं प्रमाद किया हो, स्मरण नहीं आता। यह पर्वतीय प्रदेश पुण्यभूमि है। यहाँके ग्रामजन श्रद्धालु हैं और उनके इतने श्रमसे उपार्जित, श्रद्धार्पित आहारमें अन्नदोष भी सम्भव नहीं है। इनका श्रम ईमानदारीका यह पवित्र उपार्जन—तब दोष कहाँ है?

मैं आठ पुरश्चरण पूरे कर चुका हूँ। त्रिकाल-स्नान, एकाहार, लगभग चौदह घण्टे प्रतिदिनकी साधना क्या थोड़ी होती है? प्रथम पुरश्चरणके पश्चात् तो मुझे अब अपना आसन भी मध्यमें परिवर्तित नहीं करना पड़ता। मैं अभ्यस्त हो चुका हूँ स्थिर बैठे रहनेका।

शुद्ध पवित्र देश, पवित्र आहार, प्रमादरहित अनवरत साधन और कोई आचार-दोष नहीं; किंतु मेरा मन्त्र उज्जीवित क्यों नहीं होता? मन्त्र-देवताने अबतक मुझे दर्शन देनेकी कृपा क्यों नहीं की? कहाँ त्रुटि है मेरे साधनमें?

मन्त्रशास्त्र सत्य नहीं है—ऐसी बात मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। मैं अपने मन्त्रका प्लावन, ताडन, दाहनादि सप्त संस्कार भी सम्पन्न कर चुका। अब लौटना पड़ेगा मुझे। यदि वे परमोदार विद्वान् जीवित हों—दूसरा कोई मुझे दीख नहीं पड़ता।

× × ×

बड़ा संकोच हुआ यहाँ आकर। मैं इन अतिशय वृद्ध एवं विद्वान्‌को कैसे बतलाऊँ कि केवल केशोंकी जटा बन जाने तथा दाढ़ी बढ़नेसे मैं उनका प्रणम्य नहीं हूँ। कितने श्रद्धालु और उदार हैं ये।

'अश्रद्धया हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः।'

आज यह सूत्र सुना दिया इन्होंने। मन्त्रमें श्रद्धा न हो—वह निश्चय फलप्रद होगा, ऐसी दृढ़ आस्था न हो तो मन्त्र अपनी शक्ति प्रकट नहीं करता; किंतु मेरी श्रद्धा तो शिथिल कभी नहीं हुई। बिना श्रद्धाके कोई दीर्घकालतक इतना श्रम कर सकता है?

एक बात मुझे स्वीकार है—मैं बहुत त्वरापूर्वक मन्त्रोच्चारण करता हूँ। मन्त्र-संख्या पूर्ण करनेपर मेरा ध्यान विशेष रहता है। मेरा चित्त, पता नहीं कहाँ-कहाँ जाता रहता है। स्थिर चित्तसे, स्वस्थ गतिसे, मन्त्रार्थ चिन्तनपूर्वक जप मैंने नहीं किया है।

यहाँ भी गंगातट है। पण्डितजीका सांनिध्य है। जनपदसे बाहर एकान्तमें एक झोंपड़ीकी व्यवस्था वे कल कर देनेको कहते हैं। अब एक पुरश्चरण यहीं करना उचित होगा।

× × ×

मुझे चिन्ता नहीं है कि दो वर्षके स्थानपर ढाई वर्ष इस पुरश्चरणमें लगे हैं। मुझसे अधिक चिन्ता तथा निराशा तो पण्डितजीको मेरी असफलतासे हुई है। वे इन ढाई वर्षोंमें मेरे संरक्षक, निरीक्षक, प्रतिपालक सभी रहे हैं। कितने खिन्न गये हैं आज वे यहाँसे। उनके वे भरे-भरे नेत्र, कान्तिहीन मुख—बिना कुछ कहे वे यहाँसे लौट गये हैं। उनके लिये मनमें चिन्ता हो गयी है।

× × ×

पण्डितजी तो यहाँसे जाकर सीधे अपने उपासना-कक्षमें बैठ गये हैं। उनका पूरा परिवार चिन्तित है। उन्होंने अन्न-जल कुछ नहीं लिया सायंकालतक। अजस्र अश्रु झर रहे हैं उनके नेत्रोंसे। किसीकी ओर दृष्टि उठाकर वे नहीं देखते हैं। कोई संकेत नहीं किया उन्होंने मेरे वहाँ जानेपर भी।

'हे प्रभो! हे दयामय! उन वृद्धपर दया करो! मुझे इन विप्रको पीड़ा पहुँचानेके पापसे बचाओ!

× × ×

आज प्रात:काल ही पण्डितजी आ गये थे। कितने प्रसन्न थे वे। 'आप मेरे अनुरोधको स्वीकार करके एक पुरश्चरण और कर लें!' कितना आग्रह था उनके स्वरोंमें। मैं तो निराश हो चुका था; किंतु उनका इतना आग्रह है तो दो-ढाई वर्ष और सही। जीवनमें अब कुछ करना भी तो नहीं है। इतने दिनोंके अभ्यासने ऐसा बना दिया है कि जिह्वा मन्त्र-जप किये बिना मानती नहीं है। अब कोई कामना भी तो नहीं रही। मन्त्रदेवताका साक्षात्कार—लेकिन किसलिये? एक कुतूहलमात्र लगता है। मैं क्या माँगूँगा? मनमें ढूँढ़कर भी कुछ पाता नहीं हूँ।

वे कह गये हैं—'आज अच्छा दिन नहीं है। कल शेष विचार करूँगा।' आज वे श्रान्त भी बहुत थे। कल अहर्निश निर्जल व्रत किया उन्होंने। उनका वृद्ध शरीर, व्रत और रात्रि-जागरण उनको थका तो देगा ही। आज उनके लिये विश्राम आवश्यक था।

× × ×

आज पण्डितजीने एक अपरिचित तथ्य प्रकट किया है। 'मन्त्र-साधन त्रिपाद होता है। मन्त्र, मन्त्रदेवता (इष्ट) तथा गुरुमें दृढ़ श्रद्धा—इस साधनके चरण हैं। एक भी चरण भंग हो तो साधन पंगु होकर असफल हो जाता है।'

मन्त्र और इष्टमें मेरी श्रद्धा कभी शिथिल नहीं हुई; किंतु मन्त्रदाता उन साधुमें मेरी श्रद्धा प्रारम्भमें ही नहीं थी। पण्डितजी कहते हैं—'गुरुका देह एवं दैहिक व्यापार दृष्टि देनेकी वस्तु नहीं। वह तो चिन्मय वपु मन्त्र-देवताका स्वरूप है। गुरु-देह तो इष्टका पीठ है। मन्त्र-दीक्षा, नाद-परम्परा बीज जहाँसे प्राप्त हुआ, उस उद्गममें श्रद्धा शिथिल हो जायगी तो मन्त्रका शक्तिप्रवाह बाधित हो जायगा।'

'अब उनका शरीर तो रहा नहीं। आप उनके आश्रममें अनुष्ठान करें। उनकी पादुकाएँ वहाँ हैं। उनका पूजन प्रतिदिन करते रहें।' पण्डितजीने यह बात अपनी ओरसे नहीं कही है। उन्होंने मुझे बताया नहीं; किंतु लगता है कि कल अपने आराध्यकक्षमें उन्हें इस आदेशका आभास हुआ है।

× × ×

वह शत-शत चन्द्रोज्ज्वल दिव्य ज्योति—अब भी उसके स्मरणसे देहका कण-कण आनन्दविभोर हो उठता है। मैं पादुका-पूजन करके प्रणत हुआ और सम्पूर्ण स्थान उस स्निग्धोज्ज्वल प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया।

मन्त्रका वह अकल्पनीय सुधा-संगीत जो उस प्रकाश-राशिसे ही झर रहा था, प्राणोंको सिंचित कर रहा था। मैंने मस्तक उठाया और कबतक मैं मुग्ध, आत्मविस्मृत देखता रहा, मुझे कुछ पता नहीं है। ज्योतिर्मय मन्त्राक्षर और उन्होंने नृत्य करते मानो एक मूर्ति बनायी। किसकी मूर्ति—कहना कठिन है। चन्द्रमौलि, गंगाधर, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, भस्मांगभूषित, सर्पसज्जित मेरे मन्त्रदेवता भगवान् शिव और मेरे मन्त्रदाता जटाजूटधारी वे साधु क्षणार्धमें एक और क्षणार्धमें दूसरी मूर्तिमें वह प्रकाश परिवर्तित होता रहा।

'वरं ब्रूहि!' जब सुनायी पड़ा, मैं किंचित् सावधान हुआ। मैं क्या माँगता, पूरे अनुष्ठान-कालमें जो सोचनेपर मनमें नहीं आया, सहसा मुखसे निकल गया—'देव! यह शिशु अज्ञ है। जो आपको परम प्रिय हो, वही दें आप!' ·················यहाँ अक्षर मिट गये हैं।

× × ×

मेरे वे परम श्रद्धेय आज नहीं रहे। श्मशानकी चिताग्निमें उनके शरीरकी आहुतिका साक्षी रहा मैं। साक्षी ही तो—मुझे इधर कोई सुख-दु:ख स्पर्श कहाँ करते हैं। मैं—पर मैं कौन? मेरा पांचभौतिक देह क्या हुआ? यह मन्त्राक्षरोंका कण-कण घनीभाव और यह नीलसुन्दर मयूर-मुकुटी—यह आनन्दका उल्लसित सागर, किसने सोचा था कि यह वरदानमें मिला करता है।

मुझे अब हिमालयकी ओर जाना है। हिमालय······
इसके आगेके पृष्ठ पढ़नेयोग्य स्थितिमें नहीं थे।

मधुराद्वैताचार्य संत श्रीगुलाबरावजी महाराज

(डॉ० श्रीअरविन्द स० जोशी मेहेकर)

बीसवीं शतीमें एक विलक्षण विद्वान् महात्माने महाराष्ट्रमें जन्म लेकर भारतीय-संस्कृति और धर्मके प्रचारमें आश्चर्यजनक कार्योंसे लोगोंका विशेष कल्याण किया।

बचपनमें ही कृष्ण-दर्शन

इन महान् महापुरुषका नाम मधुराद्वैताचार्य

श्रीगुलाबराव महाराज था। महाराष्ट्रके अमरावती जिलेमें लोणी-जैसे छोटे-से ग्राममें ९ जुलाई सन् १८८१ ई० आषाढ़ शुक्ल दशमीको अवतीर्ण हुए। माँका प्रेमच्छत्र बचपनमें ही बिछुड़ गया और उनकी लौकिक दृष्टि नवें माहमें ही चली गयी। बाह्य दृष्टिके हमेशाके लिये चले जानेपर भी आन्तर प्रज्ञाचक्षुत्व सदाके लिये खुल गया। वस्तुत: लौकिक जगत्-दृष्टि तो इनके लिये अन्धकारमय हो गयी, लेकिन लौकिक आत्म-प्रकाश जगमगाकर दिव्य तेजोवलयके रूपमें उनके अंग-प्रत्यंगसे दीप्तिमान् हो उठा। बचपनसे ही योगविद्यामें उनका असाधारण अधिकार प्रतीत होने लगा। कभी वे घण्टों समाधि लगाकर देहभाव खोकर बैठे रहते तो कभी बालकृष्णको अपने साथ बुलाकर उन्हें खाना खानेको विवश करते। कतिपय जन्मोंकी तपस्याके बाद ही प्राप्त होनेवाला भगवन्तका सगुण साक्षात्कार इस महापुरुषको बाल्य-दशासे ही सहजतासे प्राप्त था। सच्चिदानन्दघन कृष्ण-मूर्तिके साथ वे उछलते, नाचते, हँसते और खेलते थे। रातके समय अन्दरसे कमरा बन्दकर ब्रह्मानन्दमें तल्लीन होकर वे नाचते, गाते और भजन करते रहते।

अलौकिक बाललीला

घरमें छीकेपर रखी हुई खानेकी चीज मटकाना (उतार लेना), अपने साथियोंके साथ हास्य-विनोद करना, परिचितोंके साथ प्यारसे दिल्लगी करना इत्यादि लीलासे वे सबका चित्त आकर्षित कर लेते थे। गाँवमें इस अद्भुत बालककी अलौकिक लीलाके कारण ये सभीके लाड़ले बन गये थे। इनके पड़ोसकी स्त्रियाँ यह बालक्रीड़ा देखनेको जब चुपचाप आकर खड़ी हो जाती थीं, तो वे सबका नाम एकके-बाद-एक तुरंत बता देते थे। 'बिना हमें देखे और सुने आपने कैसे हमें पहचाना?' ऐसा पूछनेपर ये कहते थे—'आपकी पहनी हुई बिछुआ और कंगनके नादसे मैं नाम जान लेता हूँ।' एक बार उनके हाथसे दिवालगिरी गिर पड़ी। चारपाईपर पड़ी चद्दर, नानीकी साड़ी जलने लगी। क्रोधाविष्ट होकर उनकी नानी उन्हें मारने दौड़ी, तब वे निश्चल रहकर निश्चयपूर्वक बोले—'तू चिन्ता मत कर, केवल तेल ही जलेगा, कपड़ा जैसे-का-वैसा रहेगा।' और हुआ यही! उनके वचनके अनुसार तेल जल गया, कपड़ा ज्यों-का-त्यों रह गया। इसे देखकर सभी अवाक् हो गये।

ऊह (तर्क) सामर्थ्यसे सभी शास्त्रोंमें सर्वज्ञ

करीब दस सालतक अपने नानाके यहाँ लोणी ग्राममें सुखद कालयापन करके ये अपने पिताजीके माघान गाँवमें लौट आये। सापत्न माताके कारण यहाँ इन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा। अन्धत्वके कारण किसी शालामें जाकर शिक्षा ग्रहण करना सुगम नहीं था, परंतु इन्होंने अनेक धार्मिक

ग्रन्थ ग्रामके सुशिक्षित लोगोंसे पढ़वा लिये और आश्चर्य यह था कि वे सभी ग्रन्थ इनके मुखोद्गत हो गये। ये एक बार सुन लेनेपर विषयको अवगत कर लेते थे। शब्दरूपावली, लघुन्यासकरण, शिवलीलामृत, व्यंकटेशमहिम्न:स्तोत्र इत्यादि स्पष्टोच्चार-पूर्वक इस बालकके मुखसे सुनकर सभी दंग रह जाते थे। ये अन्धे थे, अत: ग्रन्थ दूसरोंसे पढ़वाकर सुनते थे। सुनानेवालेको कुछ-न-कुछ गुरुदक्षिणा धान्य या द्रव्य दे दिया करते थे। एक बार तो इन्होंने अपने हाथका चाँदीका कड़ा वाचक महोदयको दे दिया। सन्दर्भ-ग्रन्थोंका महत्त्व जाननेके कारण पुस्तकोंकी पेटी सिरपर उठाये बेधड़क घूमते थे। घूमने-फिरनेके लिये इन्हें कभी किसीकी मदद लेनी नहीं पड़ी। वेदवेदान्तसे लेकर योग, भक्ति, संगीत, साहित्यशास्त्र, आयुर्वेद, थियौसफी, इतिहास, काव्य, साइंसकी आधुनिक इलेक्ट्रान थिअरीतकमें उनकी मति अकुण्ठित चलती थी। जिनसे इन विषयोंपर वे ग्रन्थ पढ़वा लेते थे, उन्हें ही उस ग्रन्थका मर्म वे पढ़ाते थे। कौन किसको सिखाता है, यह सवाल वाचकके मनमें उठता था। आपने यह सब ज्ञान कैसे पाया है, यह पूछनेपर ये कहते, भगवान् व्यासजीको जो ऊह-सामर्थ्य थी, वह मुझे भगवत्कृपासे प्राप्त है, इसलिये कोई भी विषय, मनमें लाते ही मनश्चक्षुके सामने चित्रपट-जैसा चित्रित हो जाता है। उनकी भगवद्भक्ति जन्मान्तरीय सम्बन्धसे बड़ी उत्कृष्ट कोटिकी थी।

ज्ञानेश्वरकन्या और श्रीकृष्ण-पत्नी

पूनासे बारह मीलकी दूरीपर प्राचीन आलन्दी क्षेत्रमें करीब ७०० वर्षोंपूर्व संतसम्राट् श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने साक्षात् श्रीविट्ठल-रुक्मिणी माँकी उपस्थितिमें संजीवन समाधि ली थी। आज भी साधकको उनके द्वारा मार्गदर्शन और संतोंको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। श्रीगुलाबराव महाराजको उन्होंने बड़े प्यारसे अपने गोदमें लेकर स्वनामका मन्त्र (ज्ञानेश्वर माऊली) देकर अनुगृहीत किया था। संतश्रेष्ठ श्रीज्ञानेश्वरमहाराज-जैसे सद्गुरुकी प्राप्ति होते ही उनका व्यक्तित्व निखर उठा। इस गुरुदीक्षाके बाद उनका साम्प्रदायिक नाम था श्रीपाण्डुरंग महाराज। श्रीज्ञानेश्वर महाराजको अपनी जननी और श्रीकृष्ण परमात्माको अपना पति मानकर इनकी भक्ति गोपीभावसे वृद्धिंगत होती रही। 'पंचलतिका' नामकी मैं गोकुलकी गोपी हूँ', यह कहकर वे कालीपोत, चोटी, कुंकुम आदि सौभाग्य-चिह्न धारण करते थे। भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकात्यायनीका एक माहका व्रतानुष्ठान इन्होंने प्रतिवर्ष प्रारम्भ किया। जन्माष्टमी और महाशिवरात्रिका महोत्सव भी ये सानन्द सम्पन्न करते थे। घण्टोंकी चलनेवाली इनकी हरिहरोपासना देखकर और अत्यन्त मधुर वाणीसे होनेवाली 'जय जय ज्ञानेश्वर माउली' की मीठी धुन सुनकर किसी नास्तिकका भी हृदय गद्गद होकर उसकी आँखोंसे आँसू बहे बिना न रहते। इनकी भक्ति पराकाष्ठाकी थी। ऐसे भक्तोंका चरित्र परम पावन होता है।

मधुराद्वैत सम्प्रदायकी स्थापना

करीब अठारह सालकी उमरतक वे माधान—इस छोटे ग्राममें रहे। उसके बाद अमरावती, नागपुर, पूना, बम्बई, रायपुर, इन्दौर, काशी, कलकत्ता, वृन्दावन, जगन्नाथपुरी ऐसे कई शहरोंमें जाकर इन्होंने सनातनवैदिक धर्म और कृष्ण-भक्तिका प्रसार किया। अपनी भक्ति-पद्धतिके प्रसार-प्रचारके लिये इन्होंने 'मधुराद्वैत' सम्प्रदायकी स्थापना की। मीराबाई और चैतन्य महाप्रभु-जैसे महाभागवतोंके उत्कट ज्ञानोत्तर भक्तिका मनोहर आविष्कार श्रीमहाराजजीके रूपमें इस बीसवीं शताब्दीमें देखनेका सौभाग्य कतिपय सज्जनोंको प्राप्त हुआ। हजारों साधक इनके दर्शन करने और मार्गदर्शन पानेके लिये जगह-जगहसे आते रहते थे। लोकनायक बापूजी अणे, साहित्यसम्राट् न० चि० क्वेलकर, संतचरित्र लेखक ल० रा० पांगारकर, न्यायमूर्ति भवानीशंकर नियोगी ऐसे तत्कालीन महानुभावोंने इनके सत्संगका बड़ा रोचक वर्णन किया है। विदर्भके विख्यात देशभक्त दादासाहेब खापर्डेजीने उनका प्रवचन सुनकर इसे 'एक महान् आश्चर्य कहा था।'

श्रीगुलाबराव महाराजका शिष्यत्व प्राप्त करनेका सौभाग्य जिन चुने हुए व्यक्तियोंको प्राप्त हुआ उनमेंसे कुछ भक्तोंको उन्होंने श्रीकृष्णका साक्षात्कार और रासक्रीड़ाका दर्शन करवाया। ऐसे ही उनके एक भक्त श्रीनारायण पैकाजी पण्डितने (जो बादमें उनके उत्तराधिकारी होकर श्रीबाबाजी महाराज इस नामसे विख्यात हुए) युवावस्थासे ही अपना

सम्पूर्ण जीवन उनकी सेवामें समर्पण कर दिया। इनके आदर्श सेवाभावसे प्रसन्न होकर श्रीमहाराजने उन्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अधिकार प्रदान किया।

दिव्य काव्यप्रतिभा

श्रीमहाराजजीकी काव्यप्रतिभा महाकविको भी विस्मित करनेवाली थी। कुशल लघुलेखकको भी उनके काव्यको शब्दबद्ध करना असम्भव हो—ऐसा था उनके काव्यस्फूर्तिका आवेग। उन दिनों ऐसे लघुलेखकका भी प्रत्येक समय मिलना दुष्कर था। परिणामत: आज जो उपलब्ध है, वह है उनका केवल एक शतांश सहित्य-धन! 'स्वामीजी, कृपया धीरे-धीरे बताइये'—ऐसी शिष्योंकी विनती मानकर जो श्रीमहाराजने लिखनेका अवसर दिया, उतना ही वाङ्मय हम सबके लिये आज उपलब्ध है। लेकिन वह भी क्या कम है? आप प्रतिभाके धनी और साधनाकी प्रतिमूर्ति थे। भक्ति-सरणिमें चलते हुए भी आप सिद्धान्तत: समन्वयवादी थे।

संस्कृत, हिन्दी, मराठी, पहाड़ी और व्रजभाषाओंमें लिखे हुए उनके १२९ ग्रन्थ हैं और वे भी संगीत, काव्य, इतिहास, आयुर्वेद, विज्ञान, वेदान्त, भक्ति ऐसे विविध विषयोंपर। गद्य-पद्य ग्रन्थोंकी पृष्ठ-संख्या करीब ९००० तक होगी। गत ५००-६०० वर्षोंके भारतीय साहित्यका तटस्थरूपसे मूल्यांकन किया जाय तो अभिव्यक्ति, व्यापकता, आशयघनता इत्यादि साहित्यगुणोंकी दृष्टिसे शायद ही कोई उनकी बराबरी प्राप्त कर सके। किंतु कुछ ग्रन्थोंको छोड़कर, बाकी किसी ग्रन्थका अनुवाद अन्य भाषाओंमें अबतक न हो सका। इसलिये श्रीगुलाबराव महाराजका नाम भी महाराष्ट्रके बाहर किसीको ज्ञात नहीं है। उनके प्रश्नोत्तररूपमें लिखा गया संग्राह्य सुन्दर ग्रन्थ, 'साधुबोध' का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। इनके लिखे हुए 'मनोहारिणी' (गीतासार) और 'स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्ततुषार' ये दो ग्रन्थ हिन्दीमें ही हैं।

ज्ञानसूर्यका अस्त

बचपनसे जो अपार कष्ट उन्होंने झेले, उससे श्रीमहाराजकी प्रकृति उमरसे ही क्षीण हो गयी थी। वैसे उनकी देहयष्टि बहुत सुन्दर और सुदृढ़ थी। बादल-जैसा साँवला रंग, छ: फुट ऊँचाई, तेज:पुंज शरीर, आजानुबाहु, लम्बे, कुरले केश—इस प्रकार उनका बहुत आकर्षक रूप था। शास्त्रानुसार दैनिक आचरण रखनेका उनका नियम था। मल-मूत्र त्यागनेके बाद वे जल और मिट्टीसे हाथ-पाँव इतने बार धोते, जिसके कारण उनके हाथपर फोड़े आ गये थे। विद्याव्यासंग और धर्मप्रसारके कार्यमें खानेकी या नींदकी उन्होंने परवा नहीं की। प्रकृतित: अस्वस्थ्य उसका स्वाभाविक परिणाम था।

अन्तकालमें वे अपने सद्गुरुके निकट पूनामें जा ठहरे। तत्कालीन सुप्रसिद्ध वैद्य महर्षि अण्णासाहेब पटवर्धनजीने उपचार किया। लेकिन सब प्रयत्न असफल रहे। २० सेप्टेंबर सन् १९१५ ई० (भाद्रपद शुक्लद्वादशी)-को सूर्योदयकी मंगलवेलामें इस ज्ञानसूर्यका अस्त हुआ और सब भक्तगण दु:खान्धकारमें डूब गये।

काशीके सुप्रसिद्ध कैवल्य धामके आचार्य श्रीकृष्णानन्द सरस्वती जब महाराजसे मिलने आये और उनके साथ तीन दिन रहे, तब महाराजसे ही कहने लगे कि 'सत्यसे विमुख न होते हुए जगत्‌के कार्य करनेवाले श्रीकृष्ण तथा नारद ही ऐसे दो व्यक्ति इतिहास-प्रसिद्ध थे, परंतु आज तीसरे दीख रहे हैं।' प्रयागके पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्यने इन्हें बाल-बृहस्पति कहकर, आधुनिक आंग्लविद्याविभूषित विद्वानोंके लिये एक Intellectual Phenomena के रूपमें वर्णित किया।

जीवन्मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्राचीन ऋषियोंके मतानुसार भक्ति ही एक विशिष्ट साधन है और इसी मतका प्रचार करनेकी इच्छासे महाराजने कर्म, ज्ञान और उपासनाका स्वत: आचरण किया और नाना ग्रन्थोंका प्रयत्नपूर्वक लेखन कराया। ज्ञानियोंके लिये पूर्ण ज्ञान-सम्पादन करनेके पश्चात् भक्तिकी आवश्यकताको प्राचीन ऋषि, मुनि, भक्त्याचार्य तथा आद्य श्रीशंकराचार्य एवं अर्वाचीन संतोंने भी प्रतिपादित किया है। इसीको शास्त्रीय स्वरूप देकर तथा वेदान्तशास्त्रके साथ भक्तिका समन्वयकर 'मधुराद्वैत-दर्शन' इस नाममें श्रीगुलाबराव महाराजने अपना मत प्रकट किया है।

श्रीमहाराजजीके एक दोहेमें दिया हुआ उदार आश्वासन ही हमारे जीवनका अब आधार है—

बड़े प्रेमसे एक घड़ी खड़ा सद्गुरुद्वार।
तिसका चारो मुक्ती करत नि:साधनहि स्विकार॥

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

रूप-स्मरणका प्रभाव

[रावण-कुम्भकर्ण-संवाद]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

अनेकानेक रक्ष-सुभटोंके रणभूमिमें सो जानेके कारण हताश होकर रावणने कुम्भकर्णको जगानेका विचार किया। अनेक प्रकारके उपायोंद्वारा उसे जगाया। जागते ही उसने पूछा कि 'आजतक उसे कभी भी नहीं जगाया गया था तो फिर आज ऐसी कौन-सी समस्या आ गयी कि उसे उठानेकी आवश्यकता आ गयी?' रावणने सीताहरण-लंकादहन-समुद्रपर सेतु निर्माणकर श्रीरामके लंका-आगमनका वर्णन करते हुए बताया कि 'अक्षयकुमार-प्रहस्त-अकंपन-अतिकाय-देवांतक-नरांतक-मकराक्ष आदि सहित खर-दूषण भी वीरगतिको प्राप्त हो चुके हैं। अब लंकाके गौरवकी रक्षा वीरवर! तुम्हारे पराक्रमके अधीन है।'

कुम्भकर्णने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा कि 'सीता जगदम्बा है। उसका हरणकर तुमने उचित नहीं किया। किंतु अनुचित भी कैसे कहूँ? देवर्षि नारद मुझे, हमारे अन्तका कारण जो वर्षों पूर्व बता चुके थे, वह असत्य नहीं था। उसे सत्य सिद्ध करनेके तुम साधन बने। बनने ही थे। बन गये।'

रावण जानता था कि यदि उसने सीताको लौटानेका प्रस्ताव रख दिया तो समस्या हो जायगी। कुम्भकर्ण विभीषण-जैसा सज्जन तो नहीं था कि उसे भी लात मारकर निकाल देता। वह कुम्भकर्णके चरित्रकी दुर्बलता जानता था। एक संकेतपर मदिराके घड़े-के-घड़े, विभिन्न प्रकारके मांसोंके भार-के-भार आने लगे। कुम्भकर्ण खा-पीकर रणरंगमें रँगने लगा। इस स्थितिमें उसने पूछा कि 'सखे! तुमने जिस कारण जानकीका हरण किया, उसका उपभोग भी किया कि नहीं?'

रावणने उत्तर दिया कि 'समस्त प्रकारके लोभ-लालच, भय आदि दिखाकर थक चुका हूँ, परंतु वह मेरी ओर देखनेको भी तैयार नहीं है।'

मदकी मादकतामें धुत कुम्भकर्ण बोला, 'अरे राक्षसराज! तुम तो मायावी हो। एक बार रामका रूप रखकर चले जाते। काम बन जाता।'

रावण बोला, 'अरे मित्र! सखे! मैंने यह भी विचार किया था। किंतु रामका रूप धारण करनेके लिये जैसे ही मैं रामरूपका ध्यान करता हूँ कि मेरे मनकी समस्त कलुषित भावना नष्ट हो जाती है। मैं प्रत्येक स्त्रीमें अपनी माताके दर्शन करने लगता हूँ। स्वयंसे लज्जित होकर बैठ जाता हूँ।'

—कहकर रावण मौन हो गया। मदमत्त कुम्भकर्णकी वाणी अत्यधिक मदिरापानके कारण लड़खड़ाने लगी। उसी अवस्थामें वह एक-एक शब्दको खींचता हुआ-सा बोलने लगा, 'भ...इ...या, लं...के...श्व...र! उ...ठो, इ...स...अ...प...ने...अ...नु...ज... को... अं...तिम...हां... अंतिम आलिंगन दो। विदा...विदा...करो।'

प्रत्युत्तरमें रावणके 'विजयी भव' शब्दोंका अट्टहासके रूपमें उपहास उड़ाता हुआ कुम्भकर्ण मद्य-पात्रोंको ठुकराता हुआ, प्रभुके हाथोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये राक्षसी स्वभावके अनुरूप बकता-झकता, अपने बल-विक्रम-शौर्यका उच्च स्वरसे बयान करता हुआ, रक्ष-सेनाको प्रमादपूर्ण धिक्कृत दृष्टिसे देखता हुआ लंका-द्वारकी ओर न देखकर प्राचीर फाँदता हुआ, घोर गर्जनासे दिशाओंको प्रकंपित करता हुआ, समरांगणकी ओर बढ़ चला। आरतीके थाल सजाये वज्रज्वाला-सानंदिनी आदि रानियाँ उसकी ओर बढ़नेका साहस नहीं दिखा पानेके कारण दूर खड़ी रह गयीं।

श्रीरामकथाके इस पावन प्रसंगसे यही निष्कर्ष निकलता है कि श्रीरामके स्वरूपके चिन्तनमात्रसे जब उनके परम वैरीमें भी सात्त्विकताका संचार हो जाता है तो फिर श्रीरामभक्तोंका तो कहना ही क्या?

भावकी शुद्धिसे कर्मकी शुद्धि

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

किसी भी कर्मकी शुद्धिके लिये यह जानना परमावश्यक है कि उसका उद्‌गमस्थान क्या है अर्थात् कर्मकी उत्पत्ति कहाँसे होती है? विचार करनेपर मालूम होगा कि कर्ताके भाव और संकल्पसे कर्म बनता है अर्थात् पहले कर्ता किसी भावसे भावित होकर स्वयं कुछ बनता है, तब उसके अनुसार संकल्प और कर्मकी उत्पत्ति होती है। जब मनुष्य कोई अच्छा काम करनेमें प्रवृत्त होता है, तब पहले स्वयं अच्छा बनता है। वैसे ही जब किसी बुरे काममें प्रवृत्त होता है, तब पहले स्वयं बुरा बनता है। जैसे चोर बनकर चोरी करता है, भोगी बनकर भोग करता है, सेवक बनकर सेवा करता है इत्यादि। अतः यह सिद्ध हुआ कि क्रियाकी शुद्धिके लिये साधकको पहले अपने अहंभावको शुद्ध करना परम आवश्यक है; क्योंकि कारणकी शुद्धिके बिना कार्यकी वास्तविक और स्थायी शुद्धि नहीं होती। इसलिये साधकको चाहिये कि वह अपनी मान्यताको पहले स्थिर और शुद्ध बनाये, विकल्परहित—यह निश्चय करे कि मैं भगवान्‌का हूँ। यह भाव निश्चित होनेपर अपने-आप उन्हीं कामोंको करनेके संकल्प उठेंगे, जो भगवान्‌को प्रिय हैं, जो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करने आवश्यक हैं। इस प्रकार भाव, संकल्प और कर्मकी शुद्धि सुगमतापूर्वक अपने-आप हो सकती है। साधक जिस वर्ण, आश्रम, परिस्थितिमें रहता हो, उसे तो भगवान्‌की नाट्यशालाका स्वाँग समझे और उस स्वाँगके अनुसार जब जो कर्म करना आवश्यक हो; उसे खूब उत्साह, सावधानी और प्रसन्नतापूर्वक करता रहे, परंतु उस अभिनयको अपना जीवन न माने अर्थात् उसमें जीवन-बुद्धि, सद्भाव न रखे। ऐसा होनेसे अभिनयके रूपमें होनेवाली प्रवृत्तियोंका राग अंकित नहीं होगा, जिससे निर्वासना आ जायगी और प्रत्येक प्रवृत्तिके अन्तमें स्वाभाविक ही प्रेमास्पदके प्रेमकी प्रतीक्षा उदय होगी; क्योंकि अभिनयकालमें यह भावना जाग्रत् रहती है कि हमारे हिस्सेमें आया हुआ अभिनय ठीक-ठीक पूरा हो जानेपर हमारे प्रेमास्पद हमें जरूर अपनायेंगे, हमसे प्रेम करेंगे। प्रेमास्पदकी ओरसे मिले हुए अभिनयसे छिपे हुए रागकी निवृत्ति होती है। रागका अन्त होते ही अनुरागकी गंगा स्वतः लहराने लगती है—यह सभी प्रेमियोंका अनुभव है। अभिनय करते समय इस बातको कभी न भूले कि मैं उनका हूँ, जो इस लीलास्थलीरूप जगत्‌के स्वामी हैं। अतः मैं जो कुछ कर रहा हूँ या मुझे जो कुछ करना है—वह उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करना है और इस अभिनयको प्रभु देख रहे हैं।

अहंभावकी शुद्धिके बिना यदि कोई मनुष्य कर्मकी शुद्धिके लिये प्रयत्न करता है तो वह कोशिश करनेपर भी कर्मको शुद्ध नहीं बना सकता; क्योंकि जहाँ कर्मकी उत्पत्ति होती है, जो उसका कारण है, उसकी शुद्धिके बिना कर्मकी शुद्धि सम्भव नहीं है।*

माँ

(श्रीपुष्पेन्द्रसिंहजी रघुवंशी, बी०ए०, डी०एड०)

माँ चंदाकी चाँदनी माँ सूरज की धूप, वक्त पड़े ज्वालामुखी वक्त पड़े जलकूप।
दरिया माँकी नम्रता इसमें इतना प्यार, जीवनभर टूटे नहीं जिसकी अविरल धार॥

---

* अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (गीता ९। ३०)

गीताके इस श्लोकसे भी यही भाव निकलता है; क्योंकि भगवान्‌ने इसमें साधकके निश्चयकी महिमाका ही वर्णन किया है। भगवान्‌का यह कहना कि जो मेरा अनन्य भक्त होकर मुझे भजता है, वह यदि अत्यन्त दुराचारी भी हो तो भी उसे साधु ही समझना चाहिये; क्योंकि उसका निश्चय बड़ा अच्छा है, उसने जो यह निश्चय कर लिया कि मैं भगवान्‌का भक्त हूँ। यह निश्चय उसको शीघ्र ही धर्मात्मा—सदाचारी बना देगा—वह भाव इसके अगले श्लोकमें स्पष्ट है।

कहानी—

दु:खमें सुख

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

पुराने जमानेमें, राजस्थानमें ऐसी मान्यता थी कि यदि किसी व्यक्तिकी अर्थीमें पुत्रका हाथ न लगे या क्रिया-कर्मके लिये पुत्र न हो, तो उसे मोक्ष नहीं मिलता। इसीलिये वहाँ निपूतेकी गाली बहुत बुरी मानी जाती थी। पुत्र-प्राप्तिके लिये लोग व्रत-पूजन और कठोर तपस्या करते थे।

शेखावाटी अंचलके एक शहरमें एक धनाढ्य सेठ रहते थे। घर सब प्रकारकी धन-सम्पत्तिसे भरा-पूरा होनेपर भी संतानके बिना पति-पत्नी दुखी रहते थे। उन्होंने तरह-तरहके व्रत-उपवास, दान-धर्म और तीर्थयात्रा की, पर ईश्वरने उनकी नहीं सुनी। प्रौढ़ावस्था हो जानेपर वे एक तरहसे निराश हो गये। पड़ोसमें उन्हींकी जातिका एक गरीब परिवार था, जिनके यहाँ सात लड़के थे। एक दिन पति-पत्नी उनके घर गये। देखा कि २-३ वर्षसे लेकर १४-१६ वर्षतकके बच्चे आँगनमें खेल रहे थे। उन्हें देखकर दोनोंकी आँखें भर आयीं। सेठानीने गृहस्वामिनीसे कहा—'बहन, लोग मुझे निपूती कहकर ताना देते हैं। तुम्हारे सेठजी जब दुकानसे सूने घरमें आते हैं, तो दुखीसे रहते हैं। मैं आँचल पसारकर तुमसे एक बच्चेकी भीख माँग रही हूँ। परमेश्वरने तुम्हें सात दिये हैं, इनमेंसे सात सौ हो जायँ।' बहुत आरजू-मिन्नतके बाद भी उन लोगोंको निराश वापस लौटना पड़ा।

फतेहपुर (शेखावाटी)-के पास एक टीलेपर नाथ सम्प्रदायके एक महात्माजी रहते थे। सब प्रकारसे निराश होकर एक दिन वे उनकी शरणमें गये और पैर पकड़कर रोने लगे। कहते हैं कि नाथजी महाराज वचनसिद्ध थे। उन्होंने कहा—'अकालका वर्ष है। भूखे-नंगे बच्चोंका पालन करो, भगवान् तुम्हारी सुनेगा।' अपने गाँव लौटकर वे लोग एक बड़े नोहरेमें गरीबोंके भूखे बच्चोंको खिलाने-पिलाने लगे। दोनों पति-पत्नी सारे दिन उनकी देख-भाल करते रहते।

एक वर्षके भीतर ही उनके घरमें पुत्र-जन्म हुआ। इस अवसरपर सेठजीने जी खोलकर दान-धर्म और पूजा-पाठ किया। सारे गाँवमें मिश्री-बादाम भेजे। बच्चेको लेकर वे नाथजी महाराजकी सेवामें गये। महाराजजीने कहा—'आप दोनोंकी आयु भगवान्‌के भजन करनेकी है। संसारकी मोह-मायामें जितना कम पड़ो, उतना ही अच्छा।'

सेठ-सेठानी उस समय इतने हर्ष-विभोर थे कि नाथजीकी इस गूढ़ बातपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

सुखके दिन बीतते देर नहीं लगती। देखते-देखते शिशु बिहारी सोलह सालका तरुण हो गया। वह बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित तथा विनयशील था।

दीपावलीके बाद वे दोनों प्रतिवर्ष बिहारीके साथ महाराजजीके पास धोक खानेको जाते थे। इस बार उन्होंने जब उसका विवाह करनेकी आज्ञा चाही, तो महाराजजीने टाल-मटोल कर दी और कहा कि इतनी जल्दी क्या है? लाड़-प्यारका इकलौता बालक था। सेठ-सेठानी कभी उसे आँखोंसे ओझल नहीं होने देते। कभी-कदाच उसका पेट या सिर दुखने लगता, तो वैद्य-डॉक्टरसे घर भर जाता, परंतु कहते हैं कि मृत्यु अपने लिये सौ रास्ते बना लेती है।

राजस्थानमें जिस दिन अच्छी वर्षा हो जाती है, लोग हर्ष-विभोर होकर देखने जाते हैं कि तालाबमें कितना पानी जमा हुआ। पानीको माथेसे लगाकर आचमन करते हैं।

ऐसे ही एक दिन बिहारी मित्रोंके साथ गाँवके जोहड़ेपर गया था। आचमन करते समय उसका पैर फिसल गया और वह क्षणभरमें ही जलमग्न हो गया। तालाब बहुत बड़ा भी नहीं था, परंतु साथियोंके बहुत प्रयत्न करनेपर भी कुछ फल नहीं निकला। सेठ-सेठानीका बुरा हाल था। पागल-जैसे हो गये, स्वयं भी तालाबमें डूबनेके लिये जिद करने लगे, लोगोंने मुश्किलसे उन्हें पकड़े रखा।

दूसरे दिन ही दोनों महाराजजीके टीलेपर जाकर उनके पैर पड़कर बैठ गये। कहने लगे कि आपने हमें इस बुढ़ापेमें उलटा दुखी कर दिया, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पुत्र ही न पैदा होता। महाराजजीने समझानेका प्रयत्न किया कि जो कुछ होता है, सब ईश्वरकी इच्छासे होता है और मनुष्यको उसे शिरोधार्य करना चाहिये। बिहारीके साथ तुम्हारा इतने ही दिनोंका सम्बन्ध था।
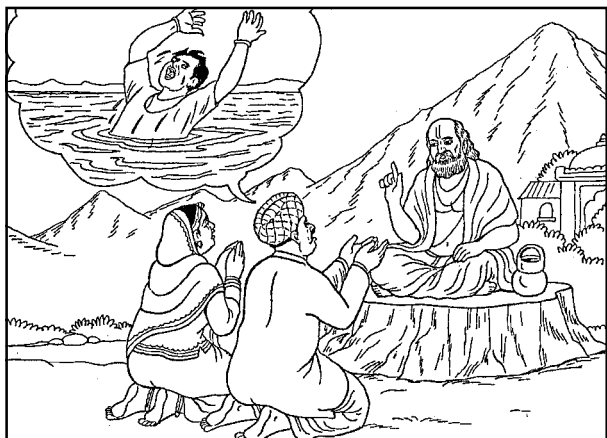
बहुत विनती-प्रार्थनापर महाराजने कहा कि गरीब और अनाथ बच्चोंके लिये स्कूल खोलकर उनकी पढ़ाईकी और रहने-खानेकी व्यवस्था करो।

सेठजीने अपने एक मकानमें इस प्रकारके छोटे बच्चोंका एक स्कूल खोल दिया। दोनों पति-पत्नी दूसरे सारे कार्योंको छोड़कर सुबहसे शामतक उनकी शिक्षा, देखभाल और खिलाने-पिलानेकी व्यवस्था करने लगे। बच्चे उनसे इतने हिल-मिल गये कि उन्हें 'माताजी' 'पिताजी' कहने लगे। वे कभी उनकी गोदमें आकर बैठ जाते, तो कभी पीछेसे आकर आँखें बन्द कर देते। कभी-कदाच कोई बच्चा बीमार हो जाता, तो उनके हाथसे दवा लेनेकी जिद करने लगता।

सदाकी भाँति, दीपावलीके बाद वे दोनों दर्शन और चरण-स्पर्शके लिये महाराजजीके पास गये। उन्होंने पति-पत्नीको सुखी रहनेका आशीष दिया और हाल-चाल पूछा। सेठ-सेठानीका उत्तर था, 'महाराज! आपके आदेशका हम पालन कर रहे हैं। अब हम सुखी हैं, परम सुखी! हमें पाठशालाके बच्चोंमें अपना बिहारी मिल गया है।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

प्रेरक-प्रसंग—

दृढ़निश्चय

लाला दौलतरामजी अमृतसरमें कोर्ट इन्सपेक्टर थे। इनके शेखूपुरा जिलेके एक गुरुद्वारेमें जो पुत्र हुआ, कौन जानता था कि वह बालक आगे चलकर इतनी ख्याति प्राप्त करेगा। बालकका नाम गंगाराम था। बचपनसे ही वह अपनी धुनका पक्का था। जब गंगाराम एन्ट्रेन्स पास कर चुके, तब नौकरीकी खोजमें लाहौर आये। लाहौरमें उनके कुलके पुरोहित एक इंजीनियरके दफ्तरमें नौकर थे। गंगाराम जब उनसे मिलने गये, तब वे दफ्तरमें नहीं थे, अतः एक कुर्सीपर बैठ गये। यह कुर्सी दफ्तरके अफसर इंजीनियर साहबकी थी। इंजीनियरसाहबने आते ही गंगारामको डाँटकर अपनी कुर्सीसे उठा दिया। थोड़ी देरमें वे पुरोहितजी आये और गंगारामसे पूछने लगे—'अब तुम्हारा क्या करनेका विचार है?'

गंगारामने कहा—'विचार तो कुछ और था, पर अब बदल गया है! अब तो मैं इंजीनियर बनूँगा और जिस कुर्सीपरसे उठाया गया हूँ, उसपर बैठकर रहूँगा।'

उस समय लोगोंने हँसकर बात उड़ा दी; किंतु गंगाराम वहाँसे लौट आये और रुड़कीके टामसन कॉलेजमें भर्ती हो गये। कुछ दिनों बाद इंजीनियर होकर अपनी बात उन्होंने सच्ची कर दी। उसी ऑफिसके इंजीनियरकी कुर्सीपर वे सचमुच आ बैठे।

अपने जीवनकी कमाईका अधिकांश उन्होंने दीन-दुखियोंकी सेवामें लगाया। पचास लाखसे भी अधिक द्रव्य इन्होंने विभिन्न संस्थाओंमें व्यय किया। विद्यार्थियोंकी पढ़ाईमें इन्होंने बहुत अधिक सहायता की। सरकारने 'सर' की पदवी देकर इनका सम्मान किया था।

राम-नामका अखूट खजाना

(महात्मा गाँधीजी)

राम-नाम सिर्फ कुछ खास आदमियोंके लिये नहीं है, वह सबके लिये है। जो राम-नाम लेता है, वह अपने लिये भारी खजाना जमा करता जाता है और यह तो एक ऐसा खजाना है, जो कभी खूटता नहीं। जितना इसमेंसे निकालो, उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त ही नहीं, और जैसा कि उपनिषद् कहता है—'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालो, तो पूर्ण ही बाकी रह जाता है, वैसे ही राम-नाम है। यह तमाम बीमारियोंका एक शर्तिजा इलाज है, फिर चाहे वे (बीमारियाँ) शारीरिक हों, मानसिक हों या आध्यात्मिक हों। राम-नाम ईश्वरके कई नामोंमेंसे एक है। ××× आप रामकी जगह कृष्ण कहें या ईश्वरके अनगिनत नामोंमेंसे कोई और नाम लें, तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लड़कपनमें अँधेरेमें मुझे भूत-प्रेतका डर लगा करता था। मेरी आयाने मुझसे कहा था—'अगर तुम राम-नाम लोगे तो तमाम भूत-प्रेत भाग जायँगे।' मैं तो बच्चा ही था, लेकिन आयाकी बातपर मेरी श्रद्धा थी। मैंने उसकी सलाहपर पूरा-पूरा अमल किया। इससे मेरा डर भाग गया। अगर एक बच्चेका यह अनुभव है तो सोचिये कि बड़े आदमियोंके बुद्धि और श्रद्धाके साथ राम-नाम लेनेसे उन्हें कितना फायदा हो सकता है? लेकिन शर्त यह है कि राम-नाम दिलसे निकले। क्या बुरे विचार आपके मनमें आते हैं? क्या काम या लोभ आपको सताते हैं? यदि ऐसा है तो (इन्हें मिटानेके लिये) राम-नाम-जैसा कोई जादू नहीं। × × ×

फर्ज कीजिये कि आपके मनमें यह लालच पैदा होता है बिना मेहनत किये, बेईमानीके तरीकेसे, आप लाखों कमा लें, लेकिन यदि आपको राम-नामपर श्रद्धा है तो आप सोचेंगे कि बीबी-बच्चोंके लिये आप ऐसी दौलत क्यों इकट्ठा करें, जिसे वे शायद उड़ा दें? अच्छे आचरण और अच्छी शिक्षाके रूपमें उनके लिये आप ऐसी विरासत क्यों न छोड़ जायँ, जिससे वे ईमानदारी और मेहनतके साथ अपनी रोटी कमा सकें? आप यह सब सोचते तो हैं, परंतु कर नहीं पाते। मगर राम-नामका निरन्तर जप चलता रहे तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदयतक उतर आयेगा और वह राम-बाण चीज साबित होगा। वह आपके सब भ्रम मिटा देगा, आपके झूठे मोह और अज्ञानको छुड़ा देगा, तब आप समझ जायँगे कि आप कितने पागल थे, जो बाल-बच्चोंके लिये करोड़ोंकी इच्छा करते थे, बजाय इसके कि उन्हें राम-नामका वह खजाना देते, जिसकी कीमत कोई पा नहीं सकता, जो हमें भटकने नहीं देता, जो मुक्तिदाता है। आप खुशीसे फूले नहीं समायेंगे। अपने बाल-बच्चों और अपनी पत्नीसे कहेंगे 'मैं करोड़ों कमाने गया था, मगर वह कमाना तो भूल गया, दूसरे करोड़ लाया हूँ।' आपकी पत्नी पूछेगी 'कहाँ है वह हीरा, जरा देखूँ तो?' जवाबमें आपकी आँखें हँसेंगी, मुँह हँसेगा, आहिस्तासे आप जवाब देंगे—'जो करोड़ोंका पति है, उसको हृदयमें रखकर आया हूँ। तुम चैनसे रहोगी, मैं भी चैनसे रहूँगा।'

'सङ्कीर्त्तनम्'

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

गोविन्द हरे! गोपाल हरे!!
जय देव! दलनभवजाल हरे!!

रघुनन्दन जय जनपाल हरे!
यदुनन्दन भक्तरसाल हरे!!
शिवमानसमञ्जुमराल हरे!
गोविन्द हरे! गोपाल हरे!!

दशकन्धरकण्ठकराल हरे!
जय कंसकेशिकुलकाल हरे!!
हतदन्तवक्त्रशिशुपाल हरे!
गोविन्द हरे गोपाल हरे!!

श्यामल! जय तुलिततमाल! हरे!
केसरतिलकाञ्चितभाल! हरे!!
धृतललितकलितवनमाल! हरे!
गोविन्द हरे गोपाल! हरे!!

जय राम! भुवनभूपाल हरे!
जय नन्दयशोदाबाल हरे!!
भयभञ्जन बाहुविशाल हरे!
गोविन्द हरे! गोपाल हरे!!

अणुयुद्ध हुआ तो गायके गोबरसे लिपा घर ही बचेगा

(श्रीरजतकुमारजी)

भारत गोमांसका निर्यात करता है—यह अत्यन्त शर्मनाक बात है। जिस देशमें गायको माँ माना जाता हो, जिस देशमें गोचारण और गोपालनके लिये स्वयं परब्रह्म परमात्मा अवतार लेते हों, वह देश गोमांसका निर्यात करे—इससे बढ़कर विडम्बना और क्या हो सकती है? भारत वियतनाम, मलेशिया, सऊदी अरब, मिस्र, यूएई समेत संसारके ६५ देशोंको गोमांसका निर्यात करता है। ३१ मार्च सन् २०१४ ई० तक भारतमें पंजीकृत कत्लखानोंकी संख्या १६३२ रही है, जबकि ३०,००० से अधिक गैर पंजीकृत कत्लखाने हैं। सबसे ज्यादा कत्लखाने ३१६ महाराष्ट्रमें हैं।

गायके विभिन्न अंगोंसे विभिन्न वस्तुएँ बनायी जाती हैं, जैसे सींगसे आभूषण, कानके झुमके, गलेका हार, कंघी, कोटके बटन, अग्निशमन प्रोडक्ट आदि। उसकी चमड़ीसे जूते, चप्पल, बेल्ट आदि बनाये जाते हैं। जिलेटिन एक बाई प्रोडक्ट है, जिसका प्रयोग जेली और दूसरे खाद्य उत्पादों, कड़वी दवाओंकी कोटिंगके लिये होता है। इसकी हड्डीका उपयोग साबुन, टूथपेस्ट, बोन चायनाके उत्पादों तथा शक्करको सफेद बनानेमें होता है। इसकी आँतोंका उपयोग सर्जरीमें सिलाईके लिये प्रयुक्त होनेवाले धागेमें किया जाता है। मांसको सिलने तथा आपसमें जोड़नेमें भी इसका प्रयोग होता है। बैडमिन्टन और टेनिसके रैकेट, वॉयलिनके तार तथा अन्य संगीत-यन्त्रोंमें इसका प्रयोग होता है। इसकी पूँछके बालसे पेन्ट-ब्रुश और डस्टर बनते हैं। इसकी चर्बीसे बिस्किट पपड़ीदार और कुरकुरे बनते हैं। इसके रक्तसे बननेवाले सीरमका प्रयोग हीमोग्लोबिनमें ऑयरन टॉनिक तथा जानवरोंके टीके बनानेमें किया जाता है। इसकी ग्रन्थिसे इन्सुलीन, ट्रिप्टेन, हेपेरिन बनता है।

मुगलकालके अनेक कालखण्डोंमें गोहत्या बन्द थी। १८५७ ई० में २५०० मुसलमानोंने एक विजार (साँड़)-की प्राणरक्षाके लिये अपनी जान कुर्बान कर दी थी। अंग्रेज शासकोंने मुसलमानोंसे विजार (साँड़)-की सवारी करनेको कहा। मुसलमानोंने कहा विजार शंकरजीके बेटे हैं, हम विजारकी सवारी नहीं करेंगे। इसपर अंग्रेजोंने बन्दूक और तोप चलवाकर २५०० मुसलमानोंको मरवा दिया था।

आज मुम्बई (महाराष्ट्र)-में देवनार तथा हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश)-में अलकबीर-जैसे गो कत्लखाने चल रहे हैं। गोहत्याको धर्मभ्रष्ट अंग्रेजोंने प्रश्रय दिया। उन्होंने मुफ्तमें चाय पिलायी, विलायती घीकी पूड़ियाँ मुफ्तमें बाँटीं। अब चाय और विलायती घीके हम गुलाम हो गये। गोहत्या और गोमांसका प्रयोग भी उन्हींकी एक चाल है। जबकि गाय इतनी उपयोगी है कि इसका दूध तो अमृत है ही गोमूत्र और गोबर भी अद्भुत उपयोगी है। वर्तमान परीक्षणोंसे यह साबित हो गया है कि गायके गोबरसे लिपे घरोंपर आण्विक विकिरणका प्रभाव नहीं पड़ता।

अब यदि अणुयुद्ध हुआ, तब गायके गोबरसे लिपा हुआ घर ही बचेगा। एटमी परीक्षणसे जो विकिरण होता है, उसे गायका गोबर नष्ट कर देता है। इसीलिये आज सम्पूर्ण अमेरिकामें गोशालाएँ बन रही हैं। वहाँ आदमी गायको नहीं पालता, बल्कि गाय आदमीको पालती है। सऊदी अरबके अलरियाजमें ३८ हजार गायोंकी गोशाला बनी है। इसके कर्मचारी भी हैं। यहाँ ५ हजार भारतीय देशी नस्लकी गायें हैं। गोवंशको मरनेपर आदरके साथ दफन किया जाता है। गोमूत्रसे शुगर, ब्लड प्रेशर, कैंसर, पेटके रोग, पीलिया, जिगर आदि ठीक हो जाते हैं। गायके गोबरसे चर्मरोग ठीक हो जाते हैं। मांसाहार सभी पापों एवं रोगोंका जनक है। यहाँतक कि गोमांस तो कोढ़ रोग उत्पन्न करता है, अत: गायको मारकर नहीं, बल्कि पालकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भोजनकी शुद्धि क्या है?

सम्मान्य महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। भोजनमें शुद्धि परमावश्यक है। जैसा अन्न खाया जाता है, वैसा ही मन बनता है और जैसा मन होता है, वैसे ही उससे कर्म होते हैं और वही उसका स्वरूप होता है। कर्मानुसार ही आगे फल मिलता है। भोजनकी शुद्धिके लिये नीचे लिखी बातोंपर ध्यान रखना आवश्यक है—

चोरी, ठगी, डकैती, खून, अन्याय, असत्य, धोखा तथा व्यभिचार आदिके द्वारा आये हुए पैसे अशुद्ध होते हैं। ऐसे पैसोंसे आया हुआ अन्न तथा चोरीसे दूसरेके हकका लाया हुआ अन्न सर्वथा अशुद्ध है। उस अन्नके भोजनसे मन-बुद्धि बिगड़ते हैं; उनमें वैसी ही पापवासनाका उदय होता है।

मांस, मद्य, मछली, अण्डे—इनके संयोगसे बने भोज्य पदार्थ, चर्बी, हड्डी मिले पदार्थ, तामसिक वस्तुएँ—जैसे प्याज-लहसुन आदि, उच्छिष्ट (दूसरोंकी जूठी) वस्तुएँ, दुर्गन्धयुक्त—ये सब अशुद्ध वस्तु हैं। बड़ी सावधानीके साथ इनका त्याग किये रहना चाहिये। इनके सेवनसे मनुष्यका निश्चित पतन होता है।

भोजन बनानेवाला व्यक्ति स्वयं सदाचारी, शुद्ध, स्नान किया हुआ, शुद्ध वस्त्र पहने हुए, नीरोग हो; भोजन बनाते समय उसके मनमें प्रेम, सद्भाव, शान्ति तथा श्रद्धा हो; काम-वासना, क्रोध, वैर, हिंसा या अहितकी भावना न हो। चटोरा न हो, जो बनाता-बनाता ही चुपकेसे खाता जाय—ऐसा पाचक रसोइया अशुद्ध होता है; अशुद्ध पाचकके द्वारा बनाये भोजनमें उसके दोष संक्रमित होकर भोजन करनेवालेपर बुरा प्रभाव डालते हैं।

भोजन बनानेका स्थान शुद्ध हो, जिसमें गन्दगी, रोगकारक कीटाणु न भरे हों, (पहले रसोई बनानेका स्थान नित्य गोबर-मिट्टीसे लीपा जाता था, जिससे रोग-कीटाणु नहीं रह पाते थे)। जिस स्थानमें व्यभिचार, जूआ, चोरी, मांसादि अखाद्य वस्तुओंका पाक तथा भक्षण न होता हो, शराब न पिया जाता हो। यह स्थानकी शुद्धि है। अशुद्ध स्थानमें बने भोजनमें वहाँकी अशुद्धि आ जाती है।

भोजन बनानेके बर्तन शुद्ध हों—शुद्ध धातुसे बने हों या मिट्टीके नये बर्तन हों। जूठे, मैले तथा काट लगे न हों, जिनमें कभी मांसादि न पकाया गया हो, जो नीचकर्मी मनुष्योंके द्वारा स्पर्शित तथा काममें लाये हुए न हों।

भोजन बनाने तथा करानेवालेमें जहाँ श्रद्धा, प्रेम, आत्मीयता, हितभावना रहती है, वहाँ उस भोजनमें इन्हीं भावोंका संक्रमण होता है, जो भोजन करनेवालेका बड़ा मंगल करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने राजा दुर्योधनके अनुरोध करनेपर भी उसमें प्रेम तथा सद्भाव न होनेके कारण उसके यहाँ बहुमूल्य तथा विविध प्रकारके बढ़िया भोजन करनेसे इनकार कर दिया था और भक्त विदुरकी कुटियापर जाकर सादा, पर प्रेमभरा भोजन किया था।

माता, धर्मपत्नी, बहन तथा मनमें अत्यन्त स्नेह रखनेवाले लोगोंके द्वारा बनाया हुआ तथा कराया हुआ भोजन शुद्ध तथा लाभदायक माना गया है।

भोजन करनेवाला स्वयं शुद्ध हो, स्नान किये हुए तथा शुद्ध वस्त्र पहने हुए हो। हाथ-पैर-मुँह धोकर शान्तिसे शुद्ध आसनपर बैठकर भोजन करे। भोजन करते समय मनमें कामवासना, क्रोध, हिंसा, वैर-वृत्ति न हो; मन प्रफुल्लित हो। अन्नको प्रणाम करके भोजन करे; मौन रहे या सात्त्विक बातचीत करे। भूखसे अधिक न खाय। जीभके स्वादकी अपेक्षा वस्तुके गुण-दोषपर तथा अपने शरीरपर होनेवाले उसके परिणामपर अधिक ध्यान रखे। खड़े होकर, घूमता-फिरता हुआ या जूता पहने कभी न खाये। खानेके बाद कुल्ले करे, जिससे दाँतोंमें अन्नकण न रह जायँ; तदनन्तर हाथ अवश्य धोये। जूठन न छोड़े।

भोजन करते समय आरम्भमें भगवान्‌का स्मरण करके बलिवैश्वदेव किये अन्नका भोजन करना बहुत उत्तम है। भोजन करनेसे पहले अन्नका कुछ हिस्सा निकालकर अलग रख दे, जिसे गौ तथा पशु-पक्षी आदिको खिला दे या पहले खिलाकर तब भोजन करे।

भोजन करनेके शास्त्रीय विधानकी कुछ आवश्यक बातें ये हैं—भोजन तैयार होनेपर—

एतदन्नादिकं सर्वं ॐ अच्छिद्रमस्तु स्वाहा।

—यह मन्त्र बोलकर तथा भगवान्‌का नाम लेकर

भोजनको त्रुटिरहित पवित्र बनाये।

तदनन्तर—

'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।'

'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा॥'

—बोलकर अन्नको ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर—अमृतसे परिभावित करे, जिससे अन्न शुद्ध हो जाय। शुद्ध आहारसे सत्त्व-अन्तःकरणकी (मन-चित्त, बुद्धि आदिकी) शुद्धि होती है और सत्त्वशुद्धिसे ध्रुवा स्मृति होती है, जिससे मानव जीवन पूर्ण सफलताकी ओर अग्रसर होता है—

ॐ आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

इसके बाद—

ॐ अन्नमयाय स्वाहा इदमन्नम्।

ॐ प्राणमयाय स्वाहा एष प्राणः।

ॐ मनोमयाय स्वाहा एतन्मनः।

ॐ विज्ञानमयाय स्वाहा एतद् विज्ञानम्।

ॐ आनन्दमयाय स्वाहा एष आनन्दः।

क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अन्नका संस्कार करके देहकी पुष्टि, प्राणकी पुष्टि, मनकी पुष्टि, विज्ञानमय कोषकी तृप्ति और आनन्दमय आत्मा (परमात्मा)-की तृप्तिकी भावना करे। इसके बाद बलिवैश्वादि करे।

इसके पश्चात्—**'एतदन्नादिकं ॐ ब्रह्मार्पणमस्तु'** उच्चारण करके अन्न भगवान्‌को अर्पण करे। तदनन्तर घरमें भगवान्‌का श्रीविग्रह हो तो उनको भोग लगाये, नहीं तो मानसनिवेदन करे।

भगवान्‌के निवेदित होनेपर वह अन्न 'भगवान्‌का दिव्य प्रसाद' बन जाता है। अतः निम्नलिखित श्लोक बोलकर उसे सब जीवोंके अर्पण करे—

आब्रह्मभुवनाल्लोका देवर्षिपितृमानवाः।
मया दत्तेन अन्नेन तृप्यन्तु भुवनत्रयम्॥

फिर स्वयं 'प्रसाद' पाये। प्रसाद पानेके पूर्व लवणरहित तीन ग्रास—**'भूपतये स्वाहा'**, **'भुवनपतये स्वाहा'**, **'भूतानां पतये स्वाहा'**—इन तीन मन्त्रोंसे थालीके बाहर निकालकर भूमिपर रखे। इन्हीं मन्त्रोंसे जल भी छोड़े। इन तीन ग्रासोंसे पृथ्वी, तीनों लोक एवं चराचर जगत्‌के सम्पूर्ण प्राणियोंको संतृप्त करनेकी भावना की जाती है। तदनन्तर **'अमृतोपस्तरणमसि'** इस मन्त्रसे भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन करना चाहिये। इसका तात्पर्य है कि हम भोजन-प्रसादको अमृतका बिछावन प्रदान करते हैं। प्रसाद पानेके समय सर्वप्रथम पाँच ग्रासोंसे निम्नलिखित मन्त्रोंका क्रमशः उच्चारण करते हुए शरीरमें स्थित पंच प्राणोंमें ग्रासरूप पंच आहुति प्रदान करे—

ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा।

ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा।

ॐ उदानाय स्वाहा।

आहुति देते समय क्रमशः भावना करे—'हे प्राण! इस अन्नको यथायोग्य रस, रक्त और वीर्यमें परिणत करो। हे अपान! तुम दूषित अपक्व भागको मल-मूत्ररूपसे बाहर निकाल दो। हे व्यान! तुम रक्तको यथायोग्य पूरे शरीरमें संचालित करो। हे समान! तुम जहाँ-जितना रस-रक्तादि चाहिये, उतना रस-रक्तादि देकर सबको उज्जीवित रखो और हे उदान! मेरे शरीरकी उचित परिणति और उच्च स्तरकी प्राप्तिमें सहायता करो।'

हमारे शास्त्रोंमें कहा गया है कि 'जो अन्न भगवान्‌को निवेदन किये बिना खाया जाता है, वह मल-सदृश अपवित्र तथा हानिकारक है।'

वास्तवमें भगवान् ही अन्न, अन्नदाता, अन्नभक्षण, अन्नगृहीता बनते हैं; वे ही वैश्वानररूपसे अन्नको पचाते हैं—भगवान्‌के वचन हैं—

अहं वैश्वानरो भूत्वा पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।

(गीता)

'मैं ही वैश्वानर होकर चतुर्विध अन्नको पचाता हूँ।'

भगवान्‌से यह प्रार्थना करनी चाहिये—

'भगवन्! तुम्हीं अन्न हो, तुम्हीं अर्पण हो, तुम्हीं अर्पण करनेवाले हो, तुम्हीं 'प्रकृति' हो, तुम्हीं प्रकृतिमें स्थित 'पुरुष' हो और तुम्हीं 'पुरुषोत्तम' हो। तुम्हीं सब कुछ हो, तुम्हींमें सब कुछ है और तुम्हीं नित्य मेरे साथ रहते हो। नाथ! मैं अपने सारे कर्मोंद्वारा नित्य-निरन्तर तुम्हारी ही पूजा करता रहूँ।'

भोजन पकाते समय गृहिणियाँ भगवान्‌से मन-ही-मन प्रार्थना करें—

'हे प्रभो! तुम्हीं घर हो, तुम्हीं घरवाले हो, तुम्हीं सत्य-सत्य प्रियतम और आत्मीय हो, तुम्हीं एक बस पूजनीय

हो, वन्दनीय हो और नित्य वरणीय हो। यह अन्न तुम्हारी ही वस्तु है। हे घनश्याम! हम भी तुम्हारी ही हैं, एक तुम्हारे लिये ही भोजन बना रही हैं। यह हमारा पाक तुम्हारे ग्रहण करनेयोग्य सुन्दर बने। फिर तुम्हीं इसे ग्रहणकर—इसका आस्वादनकर इसे 'महाप्रसाद' बना दो। जिससे हमारी सेवा करनेकी शक्ति बढ़े और सारे विघ्नों—कष्टोंका नाश हो जाय।'

भोजन एक ऐसा कृत्य है, जिसके संयमपूर्ण शुद्ध रहनेसे वह भगवान्‌की पूजा बनता है—भोजनके द्वारा मनुष्य अन्तःस्थित वैश्वानररूप भगवान्‌को तृप्त करके उनसे स्वास्थ्य, दीर्घायु, सात्त्विक विचार, शुभ परिणाम, भगवत्कृपा, शुभ मति, सुख तथा शुभ गतिको प्राप्त करता है और इसके विपरीत अशुद्ध अनर्गल भोजनसे रोग, मानसपतन, अशुभ परिणाम, तामस-बुद्धि, दुःख तथा नरकोंकी प्राप्ति होती है।

जो भोजन सबका हिस्सा देकर किया जाता है, वह ईमानदारीका और पापनाशक होता है; जो केवल अपने लिये ही होता है, वह पापमय होता है। भोजनके अन्तमें '**अमृतापिधानमसि**' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। इसका तात्पर्य है कि हम अपने किये गये भोजनको अमृतसे ढकते हैं।

उपर्युक्त बातें शुद्ध भोजनके लिये बहुत आवश्यक हैं। इनका यथासाध्य अधिक-से-अधिक पालन करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(२)

शिवधनुष चिन्मय था

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद। उत्तरमें निवेदन है कि जनकपुरका वह धनुष जिसे श्रीरामचन्द्रजीने तोड़ा था अथवा जिसके टूटनेकी लीलामात्र हुई थी, मूलतः भगवान् शंकरके पिनाकसे प्रकट हुआ था। भगवान् शंकर सच्चिदानन्दमय परमेश्वर हैं। उनका धनुष, उनका वाहन, उनके आभूषण सब कुछ चिन्मय हैं—दिव्य हैं। उन्हींके स्वरूप हैं। भगवान् शिवने श्रीरामचन्द्रजीकी उस विवाहलीलामें योग देनेके उद्देश्यसे उसके अंगरूपमें ही उस धनुषको प्रकट किया था। बहुत पहलेसे ही वह जनकपुरमें इसी दिव्य सुयोगके लिये रखा गया था। उस धनुषमें घटने, बढ़ने, हलके होने और भारी होनेकी भी स्वाभाविक शक्ति थी।

जिस समय वन्दीजनोंने राजा जनकका प्रण सुनाया, उस समय जिनके मनमें कुछ विचार था, जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा और उस धनुषकी दिव्यतासे परिचित थे, वे राजा तो उस धनुषके पास ही नहीं गये—

जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

परंतु जो मूर्ख थे, अभिमानी थे, वे प्रतिज्ञा सुनते ही दौड़ पड़े उसे तोड़नेके लिये। उन्हें यह भय था कि हमसे पहले पहुँचकर कोई दूसरा न तोड़ डाले। वे तमक-तमककर उठते, धनुषमें हाथ लगाते, उसे उठानेके लिये बल लगाते; परंतु जब उठा नहीं पाते, तब लजाकर लौट आते। उस समय गोस्वामीजीने एक बड़ी सुन्दर बात कही है—

मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ।

मानो शूरवीर राजाओंकी भुजाओंका बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक—बड़ा-बड़ा होता जाता था और उनका बल पाकर गरुआता—भारी होता जाता था।

—इन पंक्तियोंद्वारा धनुषकी चिन्मयता और दिव्यताकी ओर संकेत किया गया है। अतः दस हजार योद्धा जब एक साथ लगे, तब वह धनुष उनके लिये उतना ही बड़ा और उतना ही भारी हो गया। राजा यह नहीं समझ सके कि धनुष बढ़ रहा है; वे जब जाते, उन्हें हाथ लगानेके लिये धनुष मिल जाता था।

सीताजी भगवान्‌की स्वरूपभूता साक्षात् आह्लादिनी शक्ति हैं। वे धनुषकी इस दिव्यताको जानती हैं, अतएव मन-ही-मन उसकी प्रार्थना करती हैं—

... ... । अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥

सीताजीकी इच्छाशक्तिका प्रभाव धनुषपर पड़ा; वह बहुत छोटा और हलका हो गया। इसका आभास गोस्वामीजी महाराज गीतावली (पद-संख्या ९२)-में देते हैं—

दाहिनो दियो पिनाकु
सहमि भयो मनाकु। इत्यादि

रामायण भगवान्‌की लीलाका मधुर ग्रन्थ है, प्रेमपूर्वक पाठ करके इसके रसामृतका पान करना चाहिये। व्यर्थकी शंकाओंमें पड़नेसे कोई लाभ नहीं। शेष भगवत्कृपा।

कृपानुभूति

भगवान्‌की प्रत्यक्ष कृपाकी अनुभूति

घटना ९ मई, सन् २०१६ ई० (अक्षय तृतीया)-की है। हम लोग—सपरिवार ग्यारह लोग स्नानके निमित्त २ मईको उज्जैन गये। वहाँ शिप्रा एवं भूखीमाता मन्दिरके निकट एक आश्रममें रुके थे। आश्रमकी व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वहाँ छोटी-छोटी फूँसकी एक सौ कुटियाँ बनीं थीं, जिनमें अटैच बाथरूम भी सुन्दर बने थे। हम लोगोंके पास चार कुटियाँ थीं, जिनमें सभी एडजस्ट हो गये थे। हम सभी लोग कई दिनोंतक कुम्भस्नान, देवदर्शन, संतदर्शनका आनन्द लेते रहे।

दिनांक ९ मईको अक्षय तृतीया होनेके कारण मुख्य शाहीस्नान था। हम लोगोंने प्रात: शिप्रामें आनन्दपूर्वक स्नान किया। दैनिकचर्याके अनुसार भोजन आदिसे निवृत्त होकर सभी लोग अपनी-अपनी कुटीमें आनन्दसे बैठे थे। मेरी अवस्था लगभग ८० वर्षकी है; हमारा एक बालक, जिसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष है। हम दोनों लोग अपनी कुटीमें बैठे थे, सायंकाल लगभग ३-४ बजेके बीच अचानक आँधी, तूफान आया तथा पानी बरसना प्रारम्भ हुआ, ओले भी पड़ने लगे। यद्यपि हमारी कुटीके भीतर पानी आने लगा, जिसका अनुमान पहलेसे ही था, फिर भी हम लोग निश्चिन्त होकर बैठे थे। एकाएक यह प्रतीत हुआ कि कुटिया एक तरफसे धँस रही है। मेरे बालक कृष्णकुमारने कहा—कुटिया धँस रही है, अपने लोगोंको बाहर निकलना चाहिये। मैं और कृष्णकुमार दोनों कुटीसे बाहर निकलने लगे। कुटीके दरवाजेसे बाहर निकलते ही जहाँ हम दोनों खड़े थे, वह जमीन एकाएक अचानक लगभग बीस फुट नीचे धँस गयी। कृष्णकुमार मेरे देखते-देखते जमीनके साथ नीचे समा गया। मैं भी वहीं खड़ा था, अत: मैं भी नीचे जाने लगा, परंतु वहाँ एक पाइप (रॉड) बीचमें लगी थी, जिसमें मैं पीठके बल अटक गया। वहाँ जो लोग खड़े थे, उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। कुछ ही क्षणोंमें पाइपका सहारा भी छूट गया और मैं गड्ढेके बीच लटक गया। मुझे यह अनुभूति होने लगी कि हाथ छूटते ही मैं भी नीचे चला जाऊँगा, परंतु वहाँ खड़े लोगोंने किसी प्रकार मुझे बाहर खींच लिया। उस क्षण कृष्णकुमारकी मुझे अत्यधिक चिन्ता हो रही थी, मैंने कहा—'वह नीचे चला गया।' उसी समय एक व्यक्तिने कहा कि 'वह दिख रहा है तथा उसे निकालनेका प्रयास किया जा रहा है', यह सुनकर मुझे कुछ सान्त्वना मिली। वास्तवमें नीचे पानी और मिट्टी गिरनेके कारण दलदलकी स्थिति बन गयी थी। कृष्णकुमारके पैर जाँघतक दलदलमें फँसे थे। वह दलदलसे निकलनेका प्रयास तो करता था, पर निकल नहीं पा रहा था। ऊपर खड़े लोगोंने धोती-चादर आदि बाँधकर नीचे गिराया, परंतु इससे सफलता नहीं मिली। इसी बीच एक व्यक्ति दौड़कर रस्सी लाया और रस्सी नीचे गिरायी गयी। कृष्णकुमारने रस्सी अपनी कमरमें बाँधी और रस्सीको कसकर हाथसे पकड़ा। उसी क्षण भगवत्कृपासे उसे ऊपर खींच लिया गया। एक व्यक्ति जो इस हादसेके समय वहीं खड़ा था, उसने कृष्णकुमारको नीचे गिरते समय पकड़नेका प्रयास किया, पर वह भी नीचे चला गया था। उसे भी किसी प्रकार खींच लिया गया। इस प्रकार भगवान् महाकालकी कृपासे दोनों बच गये। यह भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी असीम कृपा थी।

अब एक प्रश्न उठता है कि इस प्रकारकी घटना घटी क्यों? श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा—**'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।'**—कोई व्यक्ति एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। अर्थात् कर्म करना एक प्रकारसे मनुष्यका स्वभाव ही है, परंतु ये कर्म अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके हो सकते हैं। सत्कर्मसे पुण्य और असत् कर्मसे पापकी प्राप्ति होती है। हमारे शास्त्र, ऋषि-महर्षि और महापुरुष हमारे कल्याणके लिये निरन्तर हमें सत्कर्म (शुभकर्म) करनेकी प्रेरणा देते

हैं, परंतु जीवनमें जाने-अनजाने पाप भी बन जाते हैं। जन्म-जन्मान्तरके पाप-पुण्य अपने कर्मोंके फलस्वरूप सबको निश्चित भोगने पड़ते हैं। '**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**' गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा—'***काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥***' अर्थात् अपने द्वारा किये गये कर्मोंका भोग जन्म-जन्मान्तरमें कभी भी भोगना पड़ सकता है। यह सुना जाता है कि भीष्मपितामहको शरशय्यापर रहकर सौ जन्मपूर्व अपने किये पापकर्मका फल भोगना पड़ा, परंतु ऐसे समयमें भगवान् सच्चिदानन्द प्रभु अपनी अहैतुकी कृपासे अपने भक्तकी रक्षा भी करते हैं और संकटको सरल बनाकर पीड़ाकी अनुभूतिको नहीं होने देते। भक्त प्रह्लाद, भक्तिमती मीराबाई, द्रौपदी आदि भी इसके उदाहरण हैं। इन सबको समय-समयपर भगवान्‌की विशेष कृपाकी अनुभूति होती रही। सामान्यतः भगवान्‌की कृपा सबपर है और निरन्तर है, परंतु उनकी विशेष कृपा प्राप्त करनेके लिये अधिकारी बनना चाहिये और हम सभी इसके लिये सक्षम हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अनन्य भावसे जो भगवान्‌का चिन्तन करता है अर्थात् भगवत्-शरणागतिका भाव बन जानेपर उसकी रक्षाका सम्पूर्ण भार सच्चिदानन्द प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं। अतः हम सभीको अपने कल्याणके लिये सत्संग और सत्कर्ममें प्रवृत्त होते हुए भगवान्‌का अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए भगवत्-शरणागति प्राप्त करनी चाहिये, जिससे हम पूर्ण रूपसे निर्भय हो सकें।

इस प्रकारकी घटना हमें भगवान्‌की महती कृपाका अनुभव कराती है तथा इस घटनासे हमें सावधान होनेकी शिक्षा मिलती है।

—राधेश्याम खेमका

अवन्तिका-माहात्म्य

महाकालः सरिच्छिप्रा गतिश्चैव सुनिर्मला।
उज्जयिन्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचयेत्॥
स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम्।
महाकालं नमस्कृत्य नरो मृत्युं न शोचयेत्॥
मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥

(स्कं० पुरा० आव० अवन्तिक्षे० माहा० २६। १७—१९)

'जहाँ भगवान् महाकाल हैं, शिप्रा नदी है और सुनिर्मल गति मिलती है, उस उज्जयिनीमें भला, किसे रहना अच्छा न लगेगा। महानदी शिप्रामें स्नान करके, जो कठिनाईसे मिलता है तथा महाकालको नमस्कार कर लेनेपर फिर मृत्युकी कोई चिन्ता नहीं रहती। कीट या पतंग भी मरनेपर रुद्रका अनुचर होता है।'

इस नगरको उज्जयिनी या अवन्तिका भी कहते हैं। इस स्थानको पृथ्वीका नाभिदेश कहा गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें महाकाल लिंग यहीं है और ५१ शक्तिपीठोंमें यहाँ एक पीठ भी है। यहाँ सतीका कूर्पर (केहुनी) गिरा था। रुद्रसागर सरोवरके पास हरसिद्धि देवीका मन्दिर है; वहीं यह शक्तिपीठ है और मूर्तिके बदले केहुनीकी ही पूजा होती है। द्वापरमें श्रीकृष्ण-बलराम यहीं महर्षि सान्दीपनिके आश्रममें अध्ययन करने आये थे। उज्जयिनी बहुत वैभवशालिनी रह चुकी है। महाराज विक्रमादित्यके समय उज्जयिनी भारतकी राजधानी थी। भारतीय ज्यौतिषशास्त्रमें देशान्तरकी शून्यरेखा उज्जयिनीसे प्रारम्भ हुई मानी जाती थी। यह सप्त पुरियोंमें एक पुरी है। यहाँ बारह वर्षमें कुम्भका महापर्व होता है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गंगाजलसे प्रेतात्माओंका उद्धार

मेरा मूल निवास-स्थान मांडलगढ़ (जिला—भीलवाड़ा, राजस्थान) है। दुर्गपर ही हमारी हवेली थी, जो अब प्राय: खण्डहर हो गयी है। पिताजी सरकारी नौकरीमें होनेसे मांडलगढ़ छोड़ चुके थे। हमारे दादा-परदादा कृषक जमींदार थे। प्रस्तुत सत्य घटना लगभग ५०-५५ वर्ष पुरानी मेरे बाल्यकालकी है। हम सपरिवार दीपावलीपर मांडलगढ़ जाते थे। दीपावलीके एक दिन पूर्व रात्रि-जागरण होता था। दुर्गपर एक जलाशय बना हुआ है, जो सागरके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लगभग बीस हजार सीढ़ियाँ बनी होंगी। बारहों महीने वह पानीसे भरा रहता है। रात्रि-जागरणमें देवी-देवताओंको स्नान करानेहेतु सागरसे शुद्ध पानी लाना पड़ता था। मैं और मेरे स्वर्गीय पिताजी पानी लानेका पात्र लेकर सागर गये। सन्ध्या समाप्त हो गयी थी। कृष्णपक्षकी रात्रि होनेसे अँधेरा हो गया था। जलाशयसे पानीका पात्र लेकर हम जब निर्जन रास्तेसे आ रहे थे तो हमें मार्गके बायीं ओर एक चट्टानके पास दो स्त्रियाँ घूँघट निकाले मिलीं। दोनों पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़ी थीं, मानो किसीने आसमानसे उतारकर वहाँ स्थापित कर दी हों। उनकी लम्बाई औसत स्त्रियोंकी लम्बाईसे कुछ अधिक थी। हमें थोड़ा भय लगा। आसपास कोई नहीं था। चार कदम आगे चलकर जब हमने पीछे मुड़कर देखा तो दोनों गायब थीं। पिताजीने हनुमानचालीसाकी वह चौपाई दोहराई ‘*भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥*’ गायत्री मन्त्रका मन-ही-मन जप किया। तदनन्तर घर लौट आये। जब हमने इस बातका जिक्र स्वजनोंसे किया तो ज्ञात हुआ कि चट्टानके पास खदानमें कुछ वर्षों पूर्व दो महिलाएँ दबकर मर गयी थीं। उन्हींकी भटकती प्रेतात्माएँ कभी-कभी सशरीर दिखायी दे जाती हैं।

इस घटनाके पश्चात् वे स्त्रियाँ पुन: हमें स्वप्नमें दिखायी दीं और बोलीं—‘भैया, हमारा उद्धार कर दो। हम प्रेतयोनिमें दुखी हैं। गंगाजलसे चट्टानके पास छिड़कावकर हमारे उद्धारके लिये भगवान्से प्रार्थना करो।’ तदनन्तर मैंने एवं अन्य परिजनोंने चट्टानके पास गंगाजलका छिड़कावकर वहाँ दीपक जलाकर उन प्रेतात्माओंके उद्धारके लिये भगवान्से प्रार्थना की एवं अन्य धार्मिक कृत्य किये। इस कार्यके सम्पन्न होनेके पश्चात् ये प्रेतात्माएँ पुन: मेरे स्वप्नमें दिखायी दीं और बोलीं—‘भैया, अब हमें प्रेतयोनिसे मुक्ति मिल गयी है, हमें पितृलोकमें जगह (जाजम) मिल गयी है। ईश्वर आपका भला करें।’

इस घटनासे विदित होता है कि गंगाजलका कितना महत्त्व है; यह मानव ही नहीं, परलोकगत आत्माओंको भी शान्ति प्रदान करता है।—**डॉ० श्यामनोहर व्यास**

(२)

साहसी बालक

गुजरात राज्यके आनन्द जिलेमें एक करमसद नामका गाँव है। वहाँ अँगरेजी विद्यालय न होनेसे वहाँके कुछ विद्यार्थी पाँच-छ: मील दूर पेटलाद गाँवमें पढ़ने जाते थे। इतना रास्ता पैदल ही जाना पड़ता था, इसलिये बच्चे भोरमें ही विद्यालयके लिये निकल पड़ते थे। खेतोंके बीच पगडंडीसे होकर गुजरना होता था। रास्तेभर हँसते-खेलते, गप्प लड़ाते वे सब विद्यालय जाया करते थे। भोरका शान्त वातावरण, गाँवकी शुद्ध प्राकृतिक हवा, पक्षियोंका मधुर कलरव, इनसे बच्चोंका मन आनन्दसे भरा रहता था। एक दिन हमेशाकी तरह पाँच-छ: विद्यार्थी भोरमें विद्यालयकी ओर निकले। पगडंडी पार करते समय एक विद्यार्थीका ध्यान गया कि उनमेंसे एक कम है। आसपास देखकर वह बोला, ‘अरे! वल्लभ कहाँ गया?’ दूसरेने जवाब दिया, ‘वह देखो, वह वहाँ कुछ कर रहा है।’ उसने चिल्लाकर

पूछा, 'अरे वल्लभ! तू क्या कर रहा है? वहाँ वल्लभने जवाब दिया, थोड़ा रुको, बस, अभी मैं आ ही रहा हूँ।' इतना कहकर उसने खेतकी पगडंडीके बीच एक पत्थरके खूँटेको खींच निकाला और एक तरफ फेंक दिया। दौड़ते हुए वह फिरसे अपने साथियोंसे जा मिला।

एक साथीने पूछा, 'अरे वल्लभ! तू पीछे क्यों रह गया?' वल्लभने सरल भावसे कहा, 'रास्तेके बीच एक पत्थर गड़ा हुआ था। हमारी तरह अनेक लोगोंको उससे तकलीफ हुई होगी। अँधेरेमें कुछ लोगोंके पैरमें चोट भी लगी होगी। कल मैंने निश्चय किया था कि आज उसे उखाड़कर ही दम लूँगा। इसलिये उसे निकालकर फेंक दिया।'

यह बालक आगे चलकर देशके महान् नेता सरदार वल्लभ भाई पटेल हुए। इनकी कार्य-कुशलता और दूसरोंके प्रति सेवाकी भावना देखकर महात्मा गाँधीजीने 'सरदार' कहकर उनकी प्रशंसा की थी।

—**हरिकृष्ण नीखरा (गुप्त)**

(३)

आयुर्वेदिक घरेलू नुस्खे

[गताङ्क ६ पृ०सं०-४९ से आगे]

(१) करीब २ लीटर ताजी छाछ लेकर उसमें ५० ग्राम भुना जीरा पीसकर एवं थोड़ा-सा नमक मिला दें। जब भी प्यास लगे, तब पानीकी जगहपर एक गिलास छाछ पी लें। पूरे दिन पानीके बदलेमें यह छाछ ही पीयें। सात दिनतक यह प्रयोग करें। मस्से ठीक हो जायँगे।

(२) ग्रीष्मऋतुमें प्राय: पीठके ऊपर घमौरियाँ (छोटी-छोटी फुन्सियाँ) हो जाती हैं। ५ ग्राम सौंफ कूटकर पानीसे भरे बर्तनमें डाल दें एवं प्रात: इसी पानीसे स्नान करें तथा सौंफको पानीमें पीसकर लेप बनाकर पीठपर लगानेसे घमौरियाँ शीघ्र ही ठीक होती हैं।

(३) तुलसीकी पत्ती खानेसे जुकाम, खाँसी, श्वासकी बीमारी नजदीक नहीं फटकती। बड़ोंको दस पत्ती और बच्चोंको पाँच पत्ती पीसकर पानीके साथ चाहिये।

(४) एक छोटी हरड़ पानीमें भिगोकर रख दें। भोजन करनेके बाद उस हरड़को चूसे, पेटकी सभी बीमारियोंसे निजात मिलेगी।

(५) फोड़े, फुंसी एवं खुजलीपर नीमकी पत्तियाँ पीसकर लगानेसे ठीक हो जाते हैं और रोज एक माहतक कोंपल खानेसे फोड़े-फुंसी एवं चर्मरोगसे निजात मिल जाती है।—**सत्यनारायण सामरिया**

(४)

बहू या बेटा

मौसीको देखने नगर-अस्पताल गयी। वहाँ शारदा बहनको देखा। मैंने पूछ लिया—'अरे! शारदा बहन, तुम यहाँ कैसे?'

'उनकी (पतिकी) दोनों आँखोंमें मोतियाबिन्द हो गया था, ऑपरेशन हुआ है। चार दिनसे हम यहाँ हैं।' शारदा बहन बोली—'परंतु तुम यहाँ कैसे?'

'मेरी मौसीका भी आँखका ऑपरेशन हुआ है। मैं उन्हें देखने आयी हूँ।' मौसीको देखनेके पश्चात् वे मुझे कमरा नं० चार में ले गयीं। बैठनेके पश्चात् मैंने पूछा—'तुम्हारे बहू तथा बेटा सब मजेमें हैं।'

एकाएक गम्भीर होकर वे बोलीं—'तुझे कुछ पता ही नहीं, बेटा हमें छोड़ गया।' मैं कुछ समझी नहीं, केवल उनके मुखकी ओर देखती रह गयी। वे बोलीं—'अनिल और तरुलताका विवाह हुए चार वर्ष हुए थे, उनका संसार सुखी था। वहीं हैजेका प्रकोप आया। अनिल उसकी लपेटमें आ गया। हमने पानीकी तरह पैसा बहाया, इलाज किया; परंतु जिसकी आयु ही कम लिखी हो, वहाँ किसकी चलती है? वह हमें छोड़कर चला गया। डेढ़ वर्ष होनेको आया।' शारदा बहनकी आवाज भर्रा गयी।

सुनकर मुझे दु:ख हुआ, पूछा 'फिर तुम्हारी बहू…?' 'मेरे मनकी बात वे समझ गयीं, तुरंत बोलीं—

'है न, हमारे साथ ही है, अभी टिफिन लेकर आती होगी।'

'उस बेचारीने क्या सुख देखा?' मेरे मुँहसे निकल गया। वे बोलीं—'मैं भी यही कहती हूँ। हमने तो उसे बहुत समझाया—'बेटी! तेरी आयु ही क्या है, यह जीवन कैसे व्यतीत होगा? अब तो सब जगह होता है, तू पुनः विवाह कर ले। कहे तो हम अच्छा पात्र…।' परंतु वह एकसे दो नहीं हुई। मुझसे बोली—'माँ! ऐसा फिर कभी मत बोलना। आपकी छत्रछायाके नीचे मुझे दुःख ही क्या है। मेरा भाग्य! मुझे अब एक भवसागरसे दूसरे भवसागरमें नहीं जाना है।'

मैट्रिक पढ़ी थी ही। कन्या-पाठशालामें अध्यापिका हो गयी है। वेतन मिलनेपर सब मेरे हाथपर रख देती है। उनकी पेंशन भी कम आती है। अब ऐसे खर्च चलता है। मैंने उसे बहुत समझाया—'बेटी! तू अपना आधा वेतन अपने नामसे बैंकमें जमा करती जा।' वह बोली—'माँ! मैं भी तुम्हारी हूँ और पैसा भी तुम्हारा है; सब तुम्हारे प्रतापसे है।' उनको बिलकुल दिखायी नहीं देता था, इससे तरुलताने ही यहाँ उनकी आँखें दिखायीं और स्थिति सुनकर कहा, 'खर्चकी चिन्ता मत करना। मोतियाबिन्दको तो निकलवा ही दीजिये।'

इतनेमें ही २५ वर्षीय एक युवतीने हाथमें टिफिन लिये वहाँ प्रवेश किया और बोली—'बा बापू! जय जय।'

'लो, ये आ गयी मेरी तरु।' शारदा बहन सस्नेह बोलीं और टिफिन खोलकर पतिको भोजन कराया। तत्पश्चात् मेरी ओर संकेतकर बोलीं—'तरु! ये अंजना है। इसकी माँके साथ हमारी बहुत पटती है। इसके लिये चाय तो बना लो।'

चाय पीती हुई मैं बोली—'शारदा बहन! तुम तो बहुत भाग्यशाली हो, जो ऐसी बहू मिली। नहीं तो आजकल जहाँ देखो वहाँ…।'

'हाँ, तेरी बात एकदम सत्य है। आजकल पेटका लड़का ही वृद्ध माता-पिताको छोड़कर अलग हो जाता है, यह तो परायी पुत्री है। इसने हृदय इतना कठोर कैसे किया होगा—यही विशेष देखनेलायक है। तरु तो अमूल्य रत्न है।' शारदा बहनने प्रशंसा की।

चाय पीनेके थोड़ी देर बाद मैं बिदा लेकर बस-स्टैण्ड आकर खड़ी रही। बस आनेमें देर हुई। इतनेमें बस भी आ गयी। हम साथ ही चढ़ीं और एक ही सीटपर बैठीं। मैंने कहा—'तरु! तूने क्या सुख देखा? जीवन तो अभी बहुत लम्बा है—इसका विचार तो थोड़ा कर…।'

वह बोली—'जैसे अपना दुःख, वैसे दूसरेका दुःख। मैं मानती हूँ कि स्वार्थ ही सब कुछ नहीं है, कर्तव्य भी कुछ है। मनुष्य कर्तव्य और मानवताका अवसर छोड़ दे तो शेष ही क्या रहा? मैंने पति गँवाया है तो उन्होंने भी अपना एकमात्र पुत्र गँवाया है न? वृद्धावस्थाका आधार ही छिन गया। गाँधीजीका प्रिय भजन—***'जो पीर परायी जाने रे……'*** मुझे याद है। मुझसे उनका दुःख छिपा नहीं है। वृद्धावस्थामें मनुष्यको प्रेम तथा सहृदयताकी बहुत आवश्यकता रहती है। अपना दुःख भुलाकर दूसरेके अश्रु पोंछे, वही सच्चा मनुष्य है, ऐसा मैं मानती हूँ। माता-पिताकी छत्रछाया तो मैं बचपनमें ही गवाँ चुकी थी, भाई-भाभीके आश्रयमें बड़ी हुई हूँ। माता-पिताकी सेवा तो नहीं कर सकी, परंतु सास-ससुर भी तो माता-पिताके समान ही हैं। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि ऐसे स्नेहशील सास-ससुर मुझे मिले हैं। उनकी सेवा करनेका जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसे मैं खोना नहीं चाहती।'

मैं मन-ही-मन सोचने लगी—कितनी ऊँची उदार भावना है। तरुने वास्तवमें अपना कुल तथा शिक्षा चमका दी है। वहीं बस-स्टैण्ड आ गया और मुझे उतरना पड़ा। तरु बोली—'आप तो अंजना बहन…।'

मैं इस आर्यनारीकी सद्भावनाका विचार करती उतर पड़ी। मेरा हृदय बोल उठा—'वास्तवमें तरु शारदा बहनकी बहू नहीं; परंतु बेटा ही है।'

मनन करने योग्य

मिथ्या गर्वका परिणाम

समुद्रतटके किसी नगरमें एक धनवान् वैश्यके पुत्रोंने एक कौआ पाल रखा था। वे उस कौएको बराबर अपने भोजनसे बचा अन्न देते थे। उनकी जूँठन खानेवाला वह कौआ स्वादिष्ट तथा पुष्टिकर भोजन खाकर खूब मोटा हो गया था। इससे उसका अहंकार बहुत बढ़ गया। वह अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंको भी तुच्छ समझने और उनका अपमान करने लगा।

एक दिन समुद्रतटपर कहींसे उड़ते हुए आकर कुछ हंस उतरे। वैश्यके पुत्र उन हंसोंकी प्रशंसा कर रहे थे, यह बात कौएसे सही नहीं गयी। वह उन हंसोंके पास गया और उसे उनमें जो सर्वश्रेष्ठ हंस प्रतीत हुआ, उससे बोला—'मैं तुम्हारे साथ प्रतियोगिता करके उड़ना चाहता हूँ।'

हंसोंने उसे समझाया—'भैया! हम तो दूर-दूर उड़नेवाले हैं। हमारा निवास मानसरोवर यहाँसे बहुत दूर है। हमारे साथ प्रतियोगिता करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा। तुम हंसोंके साथ कैसे उड़ सकते हो?'

कौएने गर्वमें आकर कहा—'मैं उड़नेकी सौ गतियाँ जानता हूँ और प्रत्येकसे सौ योजनतक उड़ सकता हूँ।' उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन आदि अनेकों गतियोंके नाम गिनाकर वह बकवादी कौआ बोला—'बतलाओ, इनमेंसे तुम किस गतिसे उड़ना चाहते हो?'

तब श्रेष्ठ हंसने कहा—'काक! तुम तो बड़े निपुण हो। परंतु मैं तो एक ही गति जानता हूँ, जिसे सब पक्षी जानते हैं। मैं उसी गतिसे उड़ूँगा।'

गर्वित कौएका गर्व और बढ़ गया। वह बोला—'अच्छी बात, तुम जो गति जानते हो, उसीसे उड़ो।'

उस समय कुछ पक्षी वहाँ और आ गये थे। उनके सामने ही हंस और कौआ दोनों समुद्रकी ओर उड़े। समुद्रके ऊपर आकाशमें वह कौआ नाना प्रकारकी कलाबाजियाँ दिखाता पूरी शक्तिसे उड़ा और हंससे कुछ आगे निकल गया। हंस अपनी स्वाभाविक मन्द गतिसे उड़ रहा था। यह देखकर दूसरे कौए प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

थोड़ी देरमें ही कौएके पंख थकने लगे। वह विश्रामके लिये इधर-उधर वृक्षयुक्त द्वीपोंकी खोज करने लगा। परंतु उसे उस अनन्त सागरके अतिरिक्त कुछ दीख नहीं पड़ता था। इतने समयमें हंस उड़ता हुआ उससे आगे निकल गया था। कौएकी गति मन्द हो गयी। वह अत्यन्त थक गया और ऊँची तरंगोंवाले भयंकर जीवोंसे भरे समुद्रकी लहरोंके पास गिरनेकी दशामें पहुँच गया।

हंसने देखा कि कौआ बहुत पीछे रह गया है तो रुक गया। उसने कौएके समीप आकर पूछा—'काक! तुम्हारी चोंच और पंख बार-बार पानीमें डूब रही हैं। यह तुम्हारी कौन-सी गति है?'

हंसकी व्यंग्यभरी बात सुनकर कौआ बड़ी दीनतासे बोला—'हंस! हम कौए केवल काँव-काँव करना जानते हैं। हमें भला दूरतक उड़ना क्या आये। मुझे अपनी मूर्खताका दण्ड मिल गया। कृपा करके अब मेरे प्राण बचा लो।'

जलसे भीगे, अचेत और अधमरे कौएपर हंसको दया आ गयी। पैरोंसे उसे उठाकर हंसने पीठपर रख लिया और उसे लादे हुए उड़कर वहाँ आया जहाँसे दोनों उड़े थे। हंसने कौएको उसके स्थानपर छोड़ दिया।

[महाभारत, कर्णपर्व]

कल्याणका आगामी ९१वें वर्ष (सन् २०१७ ई०)-का विशेषाङ्क

'श्रीशिवमहापुराणाङ्क'

[श्लोकाङ्कसहित हिन्दीभाषानुवाद]

भारतीय सनातन संस्कृतिमें कृष्णद्वैपायन महर्षि श्रीवेदव्यासरचित पुराणोंकी वेदके समान प्रतिष्ठा, मान्यता तथा प्रामाणिकता है। वास्तवमें भारतीय संस्कृति एवं मानव-सभ्यताके पूर्ण परिचायक पुराण ही हैं। नारदपुराणका तो यहाँतक कहना है कि जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं—'यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ। उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते॥' **पुराणोंका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि इनमें वेदोंके तत्त्वदर्शनको आख्यानोंके माध्यमसे समझाया गया है ताकि वह शीघ्र ही सुगम रूपसे अधिगम हो सके और सभीको सुलभ हो जाय। पुराणोंका श्रवण-मनन अन्तःकरणको पवित्र करनेका एवं भगवत्प्रीतिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसीलिये पुराणोंके श्रवण एवं पारायणकी सुदीर्घ परम्परा चली आ रही है। आज भी पुराणोंके सप्ताह-पारायण, नवाह-पारायण एवं मास-पारायण आदि होते रहते हैं।**

महापुराण संख्यामें अठारह हैं। इनमें शिवपुराणका विशेष माहात्म्य है। इसके पाठ-पारायण आदिके माहात्म्यके सम्बन्धमें बताया गया है कि यह पुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें विलसित परम वस्तु—'परमात्मा' का इसमें 'शिव' नामसे गान किया गया है। जो व्यक्ति बड़े आदरसे इसे पढ़ता-सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गतिको प्राप्त कर लेता है—'यो वै पठेच्च शृणुयात् परमादरेण शम्भुप्रियः स हि लभेत् परमां गतिं वै।' **(शिवपु० विद्ये० १।६७)**

वर्तमानमें उपलब्ध शिवपुराणमें सात संहिताएँ हैं। पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है। दूसरी संहिता रुद्रसंहिता है, जो बहुत बड़ी है और पाँच खण्डोंमें विभक्त है, उनके नाम हैं—१. सृष्टिखण्ड, २. सतीखण्ड, ३. पार्वतीखण्ड, ४. कुमारखण्ड तथा ५. युद्धखण्ड। रुद्रसंहिताके अनन्तर तीसरी संहिता है शतरुद्रसंहिता। चौथी संहिताका नाम है कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं संहिता है उमासंहिता और छठी संहिता है कैलाससंहिता। अन्तिम सातवीं संहिता वायवीयसंहिताके नामसे कही गयी है, जो पूर्व और उत्तर—दो खण्डोंमें विभक्त है। इस प्रकार बृहद् आयामवाले शिवपुराणमें लगभग चौबीस हजार श्लोक हैं।

प्रतिपाद्य-विषयकी दृष्टिसे शिवपुराण अत्यन्त उपयोगी पुराण है। इसमें भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानवजीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। शिवज्ञान, शैवीदीक्षा तथा शैवागमका यह अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। साधना एवं उपासना-सम्बन्धी अनेकानेक सरल विधियाँ इसमें निरूपित हैं। कथाओंका तो यह आकर ग्रन्थ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्यरूपसे इस पुराणमें देवोंके भी देव महादेव भगवान् साम्बसदाशिवके सकल, निष्कल स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, उनके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके आख्यान, शिवरात्रि आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंकी कथाएँ, लिंगरहस्य, लिंगोपासना, पार्थिवलिंग, प्रणव, बिल्व, रुद्राक्ष, भस्म आदिके विषयमें विस्तारसे वर्णन है। यह उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा साधारण आस्तिक जनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें तो इस पुराणके अध्ययन एवं मनन तथा इसके उपदेशोंके अनुसार चलनेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। शिवपुराणका पठन-पाठन सच्ची सुख-शान्तिके विस्तारमें परम

सहायक सिद्ध हो सकता है। इसी दृष्टिसे इसके प्रकाशनपर विचार किया गया है। वैसे तो आजसे लगभग ५३ वर्ष पूर्व सन् १९६२ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' नामसे शिवपुराणका संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर गीताप्रेससे प्रकाशित हुआ था, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और आज भी उसकी उपयोगिता उसी रूपमें बनी हुई है तथापि आस्तिक जनों तथा श्रद्धालु महानुभावोंकी तभीसे यह माँग रही कि गीताप्रेससे जैसे मूल संस्कृत श्लोकोंके साथ श्रीमद्भागवत आदि पुराण निकले हैं, वैसे ही शिवपुराणको भी मूल संस्कृत तथा हिन्दी अनुवादके साथ प्रकाशित किया जाय। पाठकोंकी भावना बहुत अच्छी है, हमारा भी ऐसा ही विचार रहता आया है। भगवत्कृपासे कुछ वर्षोंपूर्व शिवपुराण मूल तो पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो गया, किंतु भाषानुवादके साथ प्रकाशनका कार्य संयोगवश सम्पन्न न हो सका। इसमें मुख्य बात यही रही कि यह पुराण विस्तारमें बहुत बड़ा है, इस कारण विशेषाङ्कके रूपमें एक वर्षमें निकलना कठिन है; क्योंकि विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्या सीमित है। अतः यह विचार बना कि विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्यामें आवश्यकतानुसार वृद्धि करके शिवपुराणका केवल भाषानुवाद श्लोकाङ्कके साथ दो वर्षोंमें विशेषाङ्कके रूपमें निकाला जाय।

उपर्युक्त योजनाके अनुसार भगवान् सदाशिवका सम्बल लेकर वर्ष २०१७ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें शिवपुराणका प्रथम भाग हिन्दी भाषानुवादके रूपमें श्लोकाङ्कसहित प्रकाशन करनेका निर्णय लिया गया है। आशा है अन्य विशेषाङ्कोंकी भाँति यह विशेषाङ्क भी सभीके लिये अत्यन्त उपादेय एवं संग्राह्य होगा। इस विशेषाङ्कमें केवल श्रीशिवपुराणका भाषानुवाद श्लोकाङ्कके साथ दिया जायगा, अतः लेखक महानुभावोंसे सादर अनुरोध है कि वे इस विशेषाङ्कमें प्रकाशनार्थ लेख न भेजें। साधारण अङ्कोंके लिये पूर्ववत् लेख भेजते रहनेकी कृपा करनी चाहिये।

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

शिवपुराण-श्रवणकी महिमा

पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसङ्कीर्तनं तथा। कल्पद्रुमफलं सम्यङ् मनुष्याणां न संशयः॥
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम्। हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम्॥
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान्। शम्भोः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥
सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्या विशेषतः। एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी॥
एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रतः। किं ब्रवीमि फलं तस्य शिवश्चित्तं समाश्रयेत्॥

[**श्रीसूतजी शौनकजीसे कहते हैं**—हे मुने!] शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्यक् फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है। कलियुगमें धर्माचरणसे शून्य चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके उद्धारके लिये भगवान् शिवने अमृतरसस्वरूप शिवपुराणकी उद्भावना की है। अमृतपान करनेसे तो केवल अमृतपान करनेवाला ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवान् शिवका यह कथामृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर कर देता है। इस शिवपुराणकी परम पवित्र कथाका विशेष रूपसे सदा ही सेवन करना ही चाहिये, करना ही चाहिये, करना ही चाहिये। इस शिवपुराणकी कथाके श्रवणका क्या फल कहूँ? इसके श्रवणमात्रसे भगवान् सदाशिव उस प्राणीके हृदयमें विराजमान हो जाते हैं। [**स्कन्दपुराण**]

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण—उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1897	श्रीमद्देवीभागवत महापुराण (मतान्तरसे) सटीक		789	संक्षिप्त श्रीशिवपुराण—मोटा टाइप	२००
1898	,, ,, ,, ,, ,, ,,	४००	44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
26,27	श्रीमद्भागवत-महापुराण ,,	५००	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ,,	२७०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३२५
48	श्रीविष्णुपुराण ,,	१४०	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
1432	श्रीवामनपुराण ,,	१२५	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	९०
1131	श्रीकूर्मपुराण ,,	१४०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१६०
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण	२००	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१००
	केवल हिन्दीमें		631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२००	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१५०

नोट— गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण सम्पूर्ण पुराणके हिन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ विस्तृत प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है। १८ में ब्रह्माण्डपुराण गीताप्रेससे नहीं छपा है।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

श्रीविष्णुपुराण (सानुवाद) बँगला (कोड 2040)—श्रीपराशर ऋषिप्रणीत यह पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रतिपाद्य भगवान् विष्णु हैं, जो सृष्टिके आदि कारण, नित्य, अक्षय तथा एक रस हैं। मूल्य ₹ १५०

गीता-प्रबोधनी (कोड 2041) असमिया—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत गीताकी इस संक्षिप्त टीकामें कुछ श्लोकोंकी संक्षेपमें व्याख्या भी दी गयी है। मूल्य ₹ ५०

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2046	हनुमानचालीसा—सटीक, नेपाली	५	2051	गजेन्द्रमोक्ष नेपाली	३
2048	शरणागति ,,	६	2052	आदित्यहृदयस्तोत्र ,,	३
2049	अमोघ शिवकवच ,,	३	2053	रामरक्षास्तोत्र ,,	३
2050	नारायणकवच ,,	३	2044	गीता मोटे अक्षरवाली—सटीक, मलयालम	२०

धोखेसे सावधान

कुछ लोग गीताप्रेसकी आर्थिक स्थितिपर सोशल मीडियापर भ्रम फैला रहे हैं।

यह स्पष्ट किया जाता है कि गीताप्रेस किसी प्रकारका अनुदान (डोनेशन) स्वीकार नहीं करता। किसी व्यक्ति या संस्थाको गीताप्रेसके नामपर कोई चन्दा आदि नहीं देना चाहिये।

अब काठमाडौं, नेपालमें

गीताप्रेस पुस्तक बिक्री केन्द्र

(थोक एवं खुदरा पुस्तकोंपर गोरखपुरसे मिलनेवाली सभी सुविधाएँ उपलब्ध)

पसल नं० 6,7,8, माधवराज सुमार्गी स्मृति भवन, वनकाली, पशुपति क्षेत्र, काठमाडौं, नेपाल।

मोबाइल : 9823490038, 9841056107

E-mail: gitapress.nepal@gmail.com , jaikishansarda@hotmail.com

प्र० ति० २१-६-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन
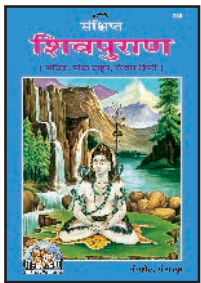
संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार— शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य ₹२००, (**कोड 1468**) विशिष्ट संस्करण, मूल्य ₹२५०, गुजराती (**कोड 1286**) मूल्य ₹२००, कन्नड़ (**कोड 1926**) मूल्य ₹ १७५, तेलुगु (**कोड 975**) मूल्य ₹२००, बँगला (**कोड 1937**) मूल्य ₹१६० प्रत्येकका डाकखर्च ₹४० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार— इसके प्रत्येक श्लोकमें भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹१६०, डाकखर्च ₹३५ अतिरिक्त। (**कोड 124**) मूल, मझला, मूल्य ₹१००, विशिष्ट सं० (**कोड 1855**) मूल्य ₹१००, डाकखर्च ₹३० अतिरिक्त। (**कोड 26, 27**) हिन्दी-व्याख्यासहित दो खण्डोंमें सेट, मूल्य ₹५००, डाकखर्च ₹६० अतिरिक्त। (**कोड 1951, 1952**) हिन्दी-व्याख्यासहित पत्राकारकी तरह बेड़िआ, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें सेट मूल्य ₹८०० डाकखर्च ₹१०० अतिरिक्त।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
586	**शिवोपासनाङ्क**	१३०
1985	**लिङ्गपुराण**—सटीक	२००
2020	**शिवपुराण**—मूल	२५०
2009	**भागवत नवनीत-** (श्रीडोंगरेजी महाराज) गुजराती भी	१६०
2024	**गणेशस्तोत्र रत्नाकर**	३५
1899	**श्रावणमास-माहात्म्य**	३२
1954	**शिव-स्मरण**	१०
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**—सानुवाद	३०
1417	**श्रीशिवस्तोत्ररत्नाकर**	३०
1343	**हर-हर महादेव**-चित्रकथा	२५
1156	**एकादश रुद्र** (शिव) ,,	५०
204	**ॐ नमः शिवाय** ,, (कन्नड़ एवं बँगलामें भी)	२५
563	**शिवमहिम्नःस्तोत्रम्** (तेलुगु, मराठी भी)	५

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
228	**शिवचालीसा** (पॉकेट)	३
1185	,, लघु, बँगला भी	२
1599	**शिवसहस्रनामस्तोत्रम्-** नामावलिसहितम्	८
1800	**पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह**	१०
230	**अमोघशिवकवच**	३
	नित्यकर्म, भजन एवं आरतीकी पुस्तकें	
592	**नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश** (गुजराती, तेलुगु भी)	६०
52	**स्तोत्ररत्नावली** (बँगला, तेलुगु भी)	३५
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**	१२
1355	**सचित्र-स्तुति-संग्रह**	१०
1591	**आरती-संग्रह,** मोटा टाइप	१५
54	**भजन-संग्रह**	५०
1849	**भजन-सुधा**	१५

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
1862	**गोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**	१५
144	**भजनामृत**	१२
142	**चेतावनी-पद-संग्रह**	३०
140	**श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली**	३०
1551	**संत जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत** (ओड़िआ)	२८०
1732	**शिवलीलामृत** (मराठी)	५०
	श्रीमद्भागवत—सम्पूर्ण हिन्दीमें	
25	**श्रीशुक-सुधा-सागर-** बृहदाकार	५००
1930	**श्रीमद्भागवत-सुधा-सागर** मराठी, गुजराती, तेलुगु	३००
1945	,, विशिष्ट संस्करण	३५०
30	**श्रीप्रेम-सुधा-सागर** (दशम स्कन्ध)	१००

श्रावणमास भगवान् आशुतोष शिव एवं भगवान् विष्णुकी उपासनाका विशिष्ट समय है। इस कालमें किये गये पूजा-पाठ, पुराण-श्रवण, दानपुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं। **श्रावणमास** २० जुलाईसे प्रारम्भ हो रहा है।